Chapter-2

द्वितीय अध्याय

गुजरात में प्रवर्तित विभिन्न संप्रदाय

द्वितीय अध्याय

गुजरात में प्रवर्तित विभिन्न संप्रदाय

परवर्ती पृष्ठों पर हमने गुजरात के संत कवियों का परिचय प्राप्त कर लिया है और हमने यह भी देख लिया है कि इनमें से ज्यादातर संत कवि किसी न किसी संप्रदाय से जुड़े हुए हैं . इसलिए इन संप्रदायों की मूल विशेषताओं को जाने बिना इन कवियों के कथ्य को या तत्कालीन परिवेश को समझना दुरूह हो सकता है.

इस संबंध में दूसरी बात यह भी ध्यान देने योग्य है कि भारत सदैव से सर्वधर्म समन्वयकारी रहा है. गुजरात प्रदेश ने अपनी विभिन्न विशेष परिस्थितियों के कारण संपूर्ण देश में अपनी धार्मिक-सामाजिक सहिष्णुता, उदारता और समन्वयकारी प्रगतिशील प्रवृत्ति के कारण अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनाये रखा है. अतः स्पष्टतः इस प्रदेश में जितने धर्मों और संप्रदायों को प्रश्रय और अपने सर्वांगीण विकास के लिए उपयुक्त वातावरण मिला, उतना शायद अन्य प्रदेशों में नहीं हो पाया . इसका प्रत्यक्ष प्रमाण ये विभिन्न तीर्थस्थान हैं . गुजरात में भृगुपुर, सोमनाथ, तारंगा, मातृगया, सिद्धपुर , द्वारका, डाकोर, शत्रुंजय, मोंढेरा, खेड़ब्रह्मा, शामलाजी , अंबाजी , उदवाडा, कालिका, बहुचराजी, जुम्मा मस्जिद, सदनशाह पीर, गिरनार, गढड़ा, वडताल, सारसापुरी और अनेक स्थलों पर वल्लभाचार्यजी की बैठके ऐसे यात्राधाम हैं, जहाँ भारत के विभिन्न भागों से हर वर्ष करोडों यात्री यात्रा करने आते हैं . इस प्रकार भारत के धार्मिक नक्शे में गुजरात का महत्त्वपूर्ण स्थान है, जो भारत की भावनात्मक एकता में अपना विशिष्ट योगदान दे रहा है. इसे धर्मों या संप्रदायों का बिखराव न मानकर धर्म स्वातंत्र्य के परंपरागत एवं संविधानीय हक्क तथा फर्ज का एक रूप ही समझना समीचीन होगा .

गुजरात ने समुद्र की सुविधा के कारण विदेशों से एक ओर अच्छा

व्यापार किया है, तो दूसरी ओर इसी समुद्र से विदेशियों ने गुजरात में आकर आश्रय भी पाया है . गुजरात के रंगपुर, रोजडी, देशलपर और लोथल तक सिंधु संस्कृति के अवशेष पाये गये हैं . योगेश्वर कृष्ण ने द्वारका में निवास किया था, इससे धार्मिकता के नक्शे में गुजरात का स्थान प्रकाशमान रहा है . गणपति की उपासना भी गुजरात में विद्यमान है. मोढेरा और वड़ोदरा के सूर्य मंदिर सूर्योपासकों के लिए अमूल्य निधि हैं . सांख्य मत के स्थापक कपिलमुनि सिद्धपुर में रहे थे, इनका आश्रम आज भी सिद्धपुर में मौजूद है. भरुच जिले के कावी नगर में कपिल ब्राह्मण रहते थे. सामवेद और अथर्ववेद के ब्राह्मण सिर्फ गुजरात में ही हैं, ऋग्वेदी और यजुर्वेदी ब्राह्मण भी गुजरात में विद्यमान हैं , इसलिए गुजरात में शास्त्रीय कर्मकांड जीवंत रह पाया है .

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा है कि साहित्य जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है ..... जनता की चित्तवृत्ति का निर्माण बहुत कुछ राजनीतिक, सामाजिक, सांप्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थितियों के अनुसार होता है. [1]

साहित्यकार जिन विभिन्न परिस्थितियों में जी रहा होता है, उन सबका प्रभाव उसके जीवन एवं कृतित्व पर अनिवार्य रूप से पड़ता ही है. गुजरात का साहित्य और ये संत कवि इसके अपवाद नहीं है . इन पर भी इन विभिन्न संप्रदायों की विचारधारा के प्रभाव को नकारा नहीं जा सकता . इन संत कवियों ने जिन आख्यानक काव्य, महाकाव्य, खंडकाव्य और पदों की रचना की है, इनमें रामायण, महाभारत पुराणादि से प्रसंगों का चयन किया गया है और इन प्रसंगों के माध्यम से जनजीवन में धार्मिक भावना को फैलाने का सत्प्रयास किया है. अतः विभिन्न संप्रदायों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर लेना नितान्त प्रासंगिक है .

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 1.

उदासी संप्रदाय

उदासी संप्रदाय के महामंडलेश्वर स्वामी गंगेश्वरानंदजी ने ब्रह्मा के पुत्रों सनक, सनंद, सनातन और सनतकुमार को उदासी संप्रदाय का स्थापक माना है.[1] सांप्रदायिक मान्यता के अनुसार इस मत को कुछ समय के लिए भुला दिया गया था, किन्तु कलियुग में इस मत को गुरु नानक एवं उनके पुत्र श्रीचंदजी के द्वारा पुनर्जीवित किया गया. गुरु नानकदेव को जब किसी सन्यासी ने ' उदासी ' शब्द की व्याख्या करने को कहा तो उन्होंने कहा, " इस संसार में सब वस्तुओं का उपयोग करते हुए भी उन्हें अपना न समझकर ईश्वर का समझना एवं सदैव साक्षात्कार करने के लिए इच्छुक रहना ही ' उदास ' कहलाता है . "

उदासियों के मठों एवं अखाडों में 'गुरु ग्रंथ साहब ' का पाठ होता है. श्रीचंद ने अपने उपदेशों में ब्रह्म, सत्य, ज्ञान एवं सदाचरण पर विशेष बल दिया है. इनके मतानुसार ब्रह्म जीवन मृत्यु से परे ' अकाल ' है. यह मत निर्गुणवादी है. इस संप्रदाय में गुरु को सत् का साक्षात्कार करानेवाला एवं सत् स्वरूप भी माना गया है. इसमें साधकों को ज्ञान की गुदड़ी, क्षमाकी टोपी, युक्ति का ' आडबंद ' और शील की लंगोटी धारण करने का आदेश दिया गया है.

सन् 1920 तक उदासी संप्रदाय को सिख पंथ की एक शाखा ही समझा जाता था. सन् 1926 में पंजाब हाईकोर्ट ने यह निर्णय दिया कि उदासी सिख नहीं है, तब से उदासी संप्रदाय ने सनातन हिन्दू धर्म को अपनाया, फिर भी आज भी उनके मठों में गुरु ग्रंथ साहब का पाठ नियमित रूप से होता है.

गुजरात के प्रमुख नगरों में इस संप्रदाय का प्रचलन है.

बौद्ध मत

गौतम बुद्ध ने बौद्ध धर्म की स्थापना की थी. उस समय तत्वज्ञान के

---

1. उदासी संप्रदाय और कवि संत रेण- डॉ. सच्चिदानंद शर्मा, पृ. 17.

विविध मत प्रवर्तमान थे, उन्होंने अपने शिष्यों को तर्क और जीवन की कसौटी पर खरे उतरनेवाले मतों को अपनाने को कहा था. उन्होंने यह भी उपदेश दिया कि मानव जन्म से नहीं, पर कर्म से पहचाना जाना चाहिए. उन्होंने चार आर्यसत्य एवं अष्टांग मार्ग का उपदेश दिया. बौद्ध तत्वज्ञान का मूल आधार दुःख एवं अनित्यता है.

गुजरात में एक समय बौद्ध अनुयायी एवं साधु दिखाई देते थे, पर शनैः शनैः यह धर्म गुजरात से लुप्त-सा हो गया . विहार, गुफाएं एवं अशोक का गिरनार का शिलालेख ही बौद्ध धर्म के अवशेष के रूप में उपलब्ध हैं . यह अवश्य कहा जा सकता है कि गुजरात के जन-जीवन पर बौद्ध धर्म का व्यापक प्रभाव पड़ा है .

जैन मत

प्राचीनकाल में सौराष्ट्र के वल्लभीपुर में बौद्ध आचार्य शांतिदेव ने बौद्ध धर्म का प्रचार किया था, परन्तु जैन मत के विशेष प्रभाव के कारण ग्यारहवीं शती तक बौद्ध धर्म का नामशेष हो गया. 13 वीं शती में वनराज चावड़ा और शीलादित्य के द्वारा जैन मत को राज्याश्रय मिलने के कारण उसका साहित्य प्रायः सुरक्षित रह सका. जैन कवि ऋषभदास, आनंदघन, चिदानंद, विनय विजय, यशोविजय, किशनदास आदि ने हिंदी में काव्य रचनाएँ की थीं .इन पदों में सैद्धांतिक एवं आध्यात्मिक पक्षों का सुंदर आकलन हुआ है.

गुजरात का जनजीवन जैनियों के सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य के सिद्धांतों से प्रभावित हुआ है. जैनियों ने प्राचीन साहित्य एवं ग्रंथों की रक्षा की है. श्वेताम्बर कवियों ने पौराणिक चरित्रों के अलावा ऐतिहासिक पात्रों एवं सत्यनिष्ठ राजाओं का चरित्र भी अंकित किया है. इन कवियों ने साहित्य के अतिरिक्त तत्वज्ञान अध्यात्म और व्याकरण के विषयों पर भी सुंदर ग्रंथों का प्रणयन किया है . गुजरात के छोटे-बड़े नगरों में जैन मंदिर देखे जा सकते हैं .

ख्रिस्ती धर्म

ख्रिस्ती धर्म के स्थापक ईसु ख्रिस्त थे. इस धर्म की प्रमुख विशेषता है प्रेम. ईसु ख्रिस्त कहा करते थे ` तू अपने पडोसियों को अपनी तरह प्रेम कर.` दूसरों की भूलों को क्षमा करना, पतितों की सेवा करना, और उनके प्रति दया दिखाना इस धर्म की विशेषता है. मधर टेरेसा का कार्य इस दिशा में प्रशंसनीय कहा जाता है . ईसु ख्रिस्त के उपदेशों को ` गिरि प्रवचन ` कहते हैं .

जब औषधालय नहीं थे, तब ख्रिस्तिओं ने ही औषधालय एवं अस्पतालें खुलवाकर मानव जाति की सेवा करने का दृढ़ संकल्प किया और उसे कार्यान्वित किया. फाधर हामियानने रक्तपित्तियों की सेवा करते करते अंत में उसी रोग का शिकार होकर अपने प्राणों का बलिदान दिया था .

वलंदा पोर्टुगीझ, फ्रेंच एवं अंग्रेज व्यापार हेतु भारत में आये तब से भारत में ख्रिस्ती धर्म का प्रवेश हुआ. गुजरात के आणंद, गोधरा, नडियाद आदि शहरों में इस धर्म के प्रधान कार्यालय कार्य कर रहे हैं, और प्रमुख नगरों में इसके चर्च भी विद्यमान हैं . गुजरात में ख्रिस्ती धर्म की रोमन केथोलिक, मेथोडिस्ट, सिरीयन क्रिश्चिन आदि शाखाएँ मानव सेवामें कार्यरत हैं .

इस्लाम धर्म

अरबस्तान में सन् 611 ई. में इस्लाम धर्म का उदय होता है. ` इस्लाम ` का अर्थ है, खुशी से अल्लाह की इच्छा के अधीन होना .` कलमा ` इस धर्म की नींव है . कलमा के शब्द है ` ला ईलाहा ईल लल्लाह, मोहंमदुर्रसुलुल्लाह,` जिसका अर्थ है, अल्लाह के सिवा और कोई अल्लाह नहीं है, और हज़रत महंमद अल्लाह के संदेशवाहक हैं . इस्लाम के पाँच स्तंभ हैं -- कलमा, नमाज़, रोज़ा, ज़कात और हज .

गुजरात के मुसलमान इस्लाम धर्म का पालन करते हैं. इस्लाम के प्रधान त्यौहार चार हैं - इदुल फित्र, इदे अदहा, इदे मिलाद और मोहर्रम . अन्य

राज्यों की तरह गुजरात में भी इस धर्म का व्यापक प्रचलन है .

जरथोष्टी धर्म

इरान का अंतिम पारसी राजा यझदझर्द सन् 641 ई. में युद्ध में मारा गया और इरान में इस्लाम राज्य की स्थापना हुई. इस्लाम धर्म निष्ठा का अस्वीकार करके अपने धर्म की रक्षा हेतु पारसी लोग सन् 697 ई.में हिंद में आये .

जरथोष्टी धर्म की स्थापना अषो जरथोष्ट ने की. इस धर्म के अनुसार संसार में दो शक्तियाँ कार्य कर रही हैं एक है अहुरमझद [सुशक्ति] और दूसरी है आहरीमान [दु:शक्ति]. पहली शक्ति सर्जनात्मक एवं दूसरी शक्ति सूक्ष्म रीति से विनाशक है. मनुष्य को चाहिए कि वह अहुरमझद में लीन रहे. सदविचार एवं सत्कर्मों के द्वारा मनुष्य सर्जनात्मक कार्य कर सकता है .

पारसी लोग अग्नि की पूजा करते हैं. वे सूर्य की भी पूजा करते हैं. वे लोग मृत शरीर को ' शांति मिनारा ' में रख देते हैं, जिससे मरने के बाद भी शरीर उदारता एवं दया बता सके.

सन् 716 ई. में पारसी लोगों ने गुजरात में संजाणा बंदर के मार्ग से प्रवेश किया. सन् 1350 ई. में अलाउदीन खल्जी के हाथों परास्त होकर वे नवसारी, वासंदा, वलसाड, सूरत, भरूच, वडोदरा, अहमदाबाद, भावनगर आदि स्थानों में चले गये. उन्होंने उदवाडा में अगियारी की स्थापना की और इरान से लाये हुए ' बहेराम ' [पवित्र अग्नि] को वहाँ रखा. आज भी उदवाडा जो वलसाड से 14 कि. मी. दूर है, पारसियों का तीर्थ माना जाता है. अवेस्ता इनका पवित्र ग्रंथ है.

डॉ. दादाभाई नवरोजी सन् 1886, 1893 और 1906 ई.में हिंदी राष्ट्रीय महासभा के प्रमुख बने थे.

इस प्रकार जरथोष्टी धर्म गुजरात में आकर अपनी सहिष्णुता के कारण गुजरात की जनता के साथ एकरूप हो गया.

सूफी संप्रदाय

सूफी के लिये ' सालिक ' शब्द का भी प्रयोग होता है. ' सालिक ' का अर्थ है अध्यात्म-पथ की ओर अग्रसर होने वाला. जब सूफी ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त कर लेता है, मारिफत का अभ्यस्त हो जाता है, तब उसे ' आरिफ ' नाम से पुकारा जाता है. पहुँचे हुए सूफी को ' वली ' [औलिया] कहकर संबोधित किया जाता है. सभी साधुओं के लिए फकीर शब्द का प्रयोग होता है. इस्लाम के रहस्यवादी ' सूफी ' नाम से विख्यात हैं. ' सूफी दर्शन ' को तसव्वुफ कहते हैं. सूफियों के लिए प्रलोभन व्यर्थ थे, उन्हें स्वर्ग की भी चिंता न थी, परमात्मा ही उनके चिंतन का विषय था.

सूफी शब्द की व्युत्पत्ति सूफ शब्द से मानी जाती है, जिसका अर्थ ऊन होता है. इस्लामी देशों में आठवीं-नवीं शती में सूफी साधकों का पता चलता है. सर्व प्रथम ' सूफी ' शब्द का प्रयोग करनेवाले अबू हाशिम सुफियान [सन् 777 ई. के लगभग] थे .[1]

सूफी साधक सांसारिक प्रेम को ईश्वर-प्राप्ति में बाधक नहीं मानते, बल्कि उसे लक्ष्य तक पहुँचाने का साधन मानते हैं. सूफी साधना प्रेम के द्वारा परमात्मा को पाने की साधना है.

सूफियों का एकेश्वरवाद सनातन पंथी इस्लाम से थोड़ा भिन्न है. सनातन पंथी परमात्मा को सभी पदार्थों से भिन्न मानते हैं। सूफी इस दृश्य जगत में परिव्याप्त सत्ता को परमात्मा से भिन्न नहीं मानते .

भारतीय सूफी, सूफी-मार्ग की चार अवस्थाएँ मानते हैं - नासूत, मलकूत , मारफित और जबरूत . अंतिम मंजिल को हकीकत कहा जाता है.

भारत में चार सूफी संप्रदाय हैं - चिश्तिया, कादिरिया, सुहरवर्दिया और नक्शबंदिया. इनमें से चिश्ती संप्रदाय महत्त्वपूर्ण है. इसके स्थापक मुइनुद्दीन चिश्ती [सन् 1142 ई. - 1236 ई.] थे. अजमेर में मुइनुद्दीन

---

1. साहित्य कोश भाग-1 सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 858.

चिश्ती की दरगाह पर देश विदेश के मुसलमान हज करने आते हैं. इस संप्रदाय में संगीत को अधिक महत्त्व दिया गया है. गुजरात में इस संप्रदाय का प्रचलन है.

कादिरी संप्रदाय के साधक हरे रंग की पगड़ी बाँधते हैं. इनके वस्त्रों में एक वस्त्र भगुए रंग का होता है. अब्दुल कादिर इस संप्रदाय के प्रमुख साधक थे.

सुहरवर्दी संप्रदाय के प्रवर्तक बहाउदीन जकरिया थे. इसके प्रमुख साधकों में सदरुदीन, शेख अहमद, सैयद आदि थे. इस संप्रदाय की जलाली, मखदूमी, मीरनशाही, दौलाशाही आदि उपशाखाएँ हैं. इस संप्रदाय में रोज़ा नमाज़ को महत्त्वपूर्ण माना जाता है.

फारसी के सूफी कवियों ने मसनवी, रुबाई तथा गज़ल जैसे काव्य रूपों का सहारा लिया है. मसनवियाँ सर्गबद्ध होती हैं. हिन्दी के सूफी कवियों ने भारतीय एवं ईरानी परंपरा का समन्वय करके मसनवियाँ लिखी हैं.

मुसलमान शासकों के साथ फारसी भी गुजरात में आयी. फारसी के साथ सूफी मत भी गुजरात में आया. गुजरात के सूफी कवियों ने उत्कृष्ट काव्य रचना की है. उनकी भाषा को खड़ी बोली का एक रूप ही कहना उचित होगा . शेख बहाउदीन बाझन, शाहअली मुहम्मद आमघनी, काजी महमूद दरियायी, हज़रत खूब मोहम्मद साहब चिश्ती, सागर महाराज आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं . आज भी यह प्रभाव स्पष्टतः देखा जाता है.

नाथ संप्रदाय

नाथ शब्द का अर्थ है ` रक्षक ` या ` शरणदाता `. महाभारत में नाथ शब्द का प्रयोग ` स्वामी ` या ` पति ` के अर्थ में हुआ है. परवर्ती काल में पाशुपत शैवमत का विकास नाथ संप्रदाय के रूप में हुआ. मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य गोरखनाथ इस मत के पुरस्कर्ता थे.

इस संप्रदाय के साधक अपने नाम के आगे ` नाथ ` शब्द लगाते है. इन्हें ` कनफटा ` और ` दरशनी ` साधु भी कहा जाता है.

गोरखनाथ [सन् 9 वीं शती] ने ` अमनस्क `, ` शासन `, ` गोरक्षक शतक `, ` गोरक्ष संहिता `, ` योग मार्तंड ` आदि ग्रंथों की संस्कृत में रचना की थी. पुरानी हिन्दी में भी इन्होंने चालीस रचनाओं का प्रणयन किया है, जिसका संपादन पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने ` गोरख-बानी ` नाम से किया है. नाथपंथी साहित्य में समन्वय का विशेष महत्त्व है. नाथपंथी मूर्तिपूजा, वेदाध्ययन तथा ईश्वरोपासना के बाह्य विधानों के प्रति अवज्ञा प्रगट करते हैं . ये जगत की उत्पत्ति नाद और बिंदु के योग से मानते हैं .

गुजरात में नाथपंथ का प्रभाव कच्छ और गिरनार के प्रदेशों पर विशेष रूप से पड़ा है. कच्छ के धीणोधर पर्वत पर धुरंधरनाथ [दादा धोरमनाथ] ने तप किया था. [1]

वैष्णव संप्रदाय

वैष्णव धर्म के अलग अलग रूप हैं. रामानुज संप्रदाय, निम्बार्क संप्रदाय, मध्व संप्रदाय, चैतन्य संप्रदाय आदि वैष्णव संप्रदाय ही हैं. गुजरात में वल्लभ मत का, मद्रास में रामानुजमत का और बंगाल में चैतन्यमत का प्राधान्य रहा है .

वैष्णव धर्म में हर वैष्णव भिन्न भिन्न नाम रूप से कृष्ण को ही उपास्य देव मानता है, और एकांत भक्ति को प्रभु प्राप्ति का साधन मानता है. इसकी कुछ विशेषताएं इस प्रकार हैं --

भक्ति - वल्लभाचार्य कर्म और ज्ञान से भक्ति को अधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं. प्रभु के अनुग्रह के बिना भक्ति या स्नेह संभव नहीं है. पुष्टि अर्थात् ` पोषण `

---

1. कच्छना संतो अने कविओ- दुलेराय कारणी, पृ. 204.

और ` पोषण ` अर्थात् प्रभु का अनुग्रह, इसलिए वे अपने संप्रदाय को पुष्टि-मार्ग कहते हैं. पुष्टि भक्त चार प्रकार के माने जाते हैं -

1 मर्यादा पुष्टि भक्त [गुण जानकर भक्ति करनेवाले भक्त]

2 प्रवाह पुष्टि भक्त [कर्मरत भक्त]

3 पुष्टि पुष्ट भक्त [सर्वाधिक स्नेहयुक्त भक्त]

4 शुद्ध पुष्टि भक्त [गुण श्रवण कीर्तन करनेवाले भक्त]

भगवत् सेवा - पुष्टिमार्ग में भगवत सेवा को महत्त्वपूर्ण माना गया है. भगवत् सेवा के तनुजा सेवा, वित्तजा सेवा और मानसी सेवा जैसे भेद किये गये हैं.

आत्म निवेदन - भक्त को सेवा का अधिकार प्राप्त करने के लिये सद्गुरु की शरण में जाना पड़ता है. गुरु भक्त को ` श्री कृष्ण शरणं मम् ` का मंत्र उसके कान में सुनाते हैं, और तुलसीमाला पहनाते हैं तब भक्त को आत्मनिवेदन करने का अधिकार प्राप्त होता है, बाद में ब्रह्म संबंध दिया जाता है.

जीव - पुष्टिमार्ग में जीव को भगवान का अंश माना गया है. सत् चित् और आनंद में से जीव में आनंद का तिरोभाव होता है. आनंद का तिरोभाव होने से भगवान के ऐश्वर्य वीर्य,यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य का भी तिरोभाव हो जाता है, फलस्वरूप जीव पराधीन, दुःखी और विषयासक्त हो जाता है. जीव में जब ब्रह्म का आनंद प्रगट होता है, तब वह प्रभुमय हो जाता है.

जगत - पुष्टिमार्ग में जगत के बारे में यह कहा गया है कि जगत का ब्रह्म से आविर्भाव और ब्रह्म में ही उसका तिरोभाव होता है, इसलिए वह ब्रह्मरूप ही है. माया को भी ब्रह्म की शक्ति ही माना गया है.

ईश - पुष्टिमार्गी कृष्ण को ही सर्वेश्वर मानते हैं. उनकी दृष्टि में वे अविकृत, सच्चिदानंद और रसरूप हैं. ब्रह्मा, विष्णु और महेशादि देव उनकी आज्ञा में रहते हैं. वे निराकार भी हैं, और साकार भी हैं. वे वैकुंठ में चतुर्भुज रूप में और गोकुल में द्विभुज रूप में विराजमान हैं. श्रीनाथजी में उनका स्वरूप गोवर्धन-धारी है .

पुष्टिमार्ग में कीर्तन का महत्त्वपूर्ण स्थान होने से संगीत कला का विकास हुआ है. संगीत के अलावा चित्रकला, काष्ठकला, पाककला आदि को भी यथायोग्य प्रोत्साहन एवं प्रश्रय मिला है. स्थापत्य और शिल्पकला को इसलिए प्रोत्साहन नहीं मिल पाया कि उनके मंदिर बाहर से मकान जैसे ही होते हैं. [1]

पुष्टिमार्गीय मंदिरों में मंगला, श्रृंगार, ग्वाल, राजभोग, उत्थापन, भोग, संध्या और शयन के दर्शन होते हैं.

वल्लभाचार्य ने अणुभाष्य, कृष्णाश्रय, सिद्धांतमुक्तावली, तत्त्वार्थदीप, पुष्टिप्रवाह मर्यादा, तत्त्वार्थप्रकाश आदि ग्रंथों की रचना की है. [2] विट्ठलनाथजी के चतुर्थपुत्र गोकुलनाथजी [सं. 1608-1697 वि.] ने श्री सुबोधिनी, वेणुगीत पर टीका, चौरासी वैष्णवों की वार्ता, वचनामृत आदि ग्रंथों के द्वारा वैष्णव धर्म की सेवा की है. हरिरायजी, पुरुषोत्तमजी, श्रीयोगी, गोपेश्वरजी आदि विद्वानों ने भी संस्कृत एवं व्रज में साहित्य सर्जन किया है. अष्टछापी कवि सूरदास, कृष्णदास, परमानंददास, कुंभनदास, नंददास, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी और गोविंदस्वामी ने व्रज में सुंदर पदों का सर्जन किया है.

वैष्णव भक्तों और आचार्यों का गुजरात एवं गुजराती साहित्य पर कितना प्रभाव पड़ा है यह इसीसे स्पष्ट है कि भुज की 'ब्रजभाषा पाठशाला' इतनी विख्यात रही है. यहाँ के महाराव लखपतिसिंह भी इससे प्रभावित रहे हैं. इस प्रकार इस धर्म के कवि एवं आचार्यों ने व्रज में काव्य रचना की जिसका प्रभाव दयाराम, प्रीतम आदि कवियों पर भी पड़ा हैं.

शैव मत

शिव को ही ईश्वर माननेवालों को शैव कहा जाता है, उनके धर्म को शैव मत कहा जाता है. शिव का अर्थ है कल्याण. शिव भक्ति में प्रेम से ध्यान

---

1. वैष्णव धर्मनो संक्षिप्त इतिहास, दुर्गाशंकर के. शास्त्री, पृ. 270.
2. वही, पृ. 255.

को अधिक महत्त्व दिया जाता है. वामनपुराण में शैव के चार मत बताये गये हैं - शैव, पाशुमत, कालदमन और कापालिक. माहेश्वरों के चार मत हैं - शैव, पाशुपत, कालामुख और कापालिक. इनके मूल ग्रंथों को शैवागम कहते हैं .

माधव ने अपने सर्वदर्शन संग्रह में पाशुपत मत को ` नकुलीश पाशुमत ` नाम दिया है. इस शब्द से यह प्रकट होता है कि नकुलिन [लकुट, लगुड या नकुल का धारण करने वाला] नामक एक व्यक्ति हुआ था, जिसने पाशुपत मत की स्थापना की थी. [1] शिवपुराण में नकुलीश का जन्मस्थान कारवण [कायावरोहण- गुजरात] बताया गया है. पाशुपत मत के केन्द्र गुजरात एवं राजस्थान हैं. नकुलीश की मूर्ति में सिर बालों से ढँका हुआ है, दाहिने हाथ में बीजोरा नामक फल है, बाये हाथ में ` लगुड ` अथवा दंड है जिसके आधार पर इन्हें नकुलीश कहा जाता है. शंकर के अठारह अवतारों में नकुलीश को आद्य अवतार माना गया है. इनका मूल ग्रंथ पाशुपत सूत्र है. [2]

पाशुपत कार्य, कारण, योग, विधि और दुःखान्त नामक पदार्थों का स्वीकार करते हैं .

कालामुख या कालदमन संप्रदाय में कपालपात्र भोजन एवं ` लगुड ` धारण करने का महत्त्व है. कापालिक भैरव को ही सर्जन, स्थिति और लय का कर्ता मानते हैं.

शैव मत का प्रचार एवं प्रसार तामिलनाडु में अधिक है. इस मत के भक्त समवायिनी और परिग्रहरूपा को शिव की शक्तियाँ मानते हैं.

वीर शैव मत के अनुयायी लिंगायत कहलाते हैं. ये वर्णव्यवस्था में विश्वास नहीं करते. ये शंकर की लिंगात्मक मूर्ति अपने गले में हमेशा रखते हैं. इस मत का प्रचार एवं प्रसार कर्णाटक में हुआ है. इस मत के स्थापक बसव हैं.

---

1. वैष्णव, शैव और अन्य धार्मिक मत- रा. गो. भंडारकर, पृ. 133.
2. संत सौरभ- प्रकाशक- म.स. विश्वविद्यालय कर्मचारी मंडल, पृ. 46.

प्रत्यभिज्ञादर्शन मत [काश्मीर शैव मत] काश्मीर में प्रचलित है. इस मत में शिव-शक्ति की एकता पर विशेष बल दिया गया है. प्रत्यभिज्ञा का अर्थ है ज्ञात वस्तु को पुन: ज्ञात करना.

इस प्रकार ' शैव मत ' में अनेक मतों का समन्वय दृष्टिगोचर होता है .

गुजरात में पाशुपत मत 12 वीं से 14 वीं शती तक व्याप्त था. सोमनाथ, मूलेश्वर और रुद्रमहालय शिव-मंदिर इसके प्रमाण हैं. सोमनाथ का नाश महमूद गज़नवी के द्वारा और रुद्रमहालय का नाश सं. 1365 वि. में अलाउदीन द्वारा हुआ था.

गुजरात के नरसिंह महेता, भालण, शिवानंद तथा रणछोड़जी दीवान का नाम शिवभक्तों में उल्लेखनीय है. रणछोड़जी दीवान ने ' शिव रहस्य ' नामक ग्रंथ व्रज में लिखा है. अखो और छोटम की रचनाओं में भी शैवमत का प्रभाव देखा जा सकता है.

शाक्त मत

देवियों की उत्पत्ति एवं नामकरण के संदर्भ में रा. गो. भंडारकर लिखते हैं कि " मार्कण्डेय पुराण [अध्याय 82] के अनुसार महिषासुर मर्दिनी देवी शिव, विष्णु, ब्रह्मदेव तथा विभिन्न देवों के प्रचंड तेज से बनी थी. उन्हें चंडी एवं अंबिका कहा गया है. आगे के विवरण में शुम्भ और निशुम्भ दैत्यों से पीड़ित होकर देवगण हिमालय पर्वत पर गए तथा देवी की स्तुति की. उसी समय पार्वती गंगा में स्नान करने को निकलीं, तब शिवा जो अंबिका भी कहलाती है पार्वती के शरीर से निकलीं और बोलीं कि शुम्भ और निशुम्भ के वध के लिए देवगण जिसकी स्तुति कर रहे हैं वह मैं ही हूँ. वे पार्वती के शरीर के कोश से उद्भूत हुई थीं. इसलिए कौशिकी कहलायीं. जब अंबिका पार्वती के शरीर से निकलीं तब पार्वती के शरीर का वर्ण कृष्ण हो गया इसीलिए उनका ' कालिका ' नाम पड़ा. युद्ध के अवसर पर शुम्भ और निशुम्भ ने उन पर आक्रमण कर दिया, तब उनका ललाट क्रोध से कृष्ण वर्ण का हो गया तथा उनसे नरमुंडों

की माला, व्याघ्र चर्म एवं हाथ में खट्वांग धारण किये हुए करालमुखी काली निकलीं. " [1]

शक्ति की उपासना करनेवालों को शाक्त और उनके धर्म को शाक्त मत कहा जाता है. इस मत की यह विशेषता है कि इसमें ईश्वर की कल्पना स्त्री रूप में की जाती है, और उसे शक्ति के नाम से अभिहित किया जाता है. शक्ति की उपासना के विविध प्रकार हैं. स्मार्त भक्त शक्ति की शिष्ट अहिंसात्मक रीति से उपासना करते हैं. शैव भक्त भयंकर रीति से कालमुख एवं कापालिक मतानुसार शक्ति की उपासना करते हैं. शाक्त भक्त भावात्मक पद्धति से उपास्य देवी से तादात्म्य स्थापित करके उपासना करते हैं.

शाक्त मत अद्वैतवादी मत है. शाक्तमत के दो प्रकार हैं कौल संप्रदाय और समयाचार संप्रदाय. कौल शक्ति और शिव की मिली हुई उपासना करते हैं. कुल का अर्थ है शक्ति या कुंडलिनी और अकुल का अर्थ है शिव. जो योग क्रिया से कुंडलिनी का उत्थान कराके शिव के साथ मिलन कराता है, उसे कौल कहते हैं. मद्य, मांस , मत्स्य, मुद्रा और मैथुन नामक पाँच मकारों से अंतर्योग कराके शिव तक पहुँचना होता है. कालान्तर में ये पाँच मकार अपना यौगिक अर्थ खो बैठे और शाक्त मत निंदनीय समझा जाने लगा.

गुजरात में शैव मत और शाक्त मत का समन्वय पाया जाता है. यहाँ दोनों मतों में सांप्रदायिक मतभेद नहीं है. देवी भागवत में इरावती, सोमेश्वर, प्रभास, सरस्वती और समुद्रतीर नामक शक्तिपीठों का उल्लेख है. सिद्धराज ने पाटण में सहस्त्रलिंग तालाब के चारों ओर 1000 शिवलिंगों की स्थापना करके 108 पीठ स्थापित किये थे. गुजरात पर शक्ति की विशेष कृपा रही है, जिसने कवियों को भी आकर्षित किया है. ` जय जय गरवी गुजरात ` नामक काव्य में नर्मद ने गुजरात की सीमाओं को देवियों की कृपा से भरा पाया है-

उत्तरमां अम्बा मात,
पूरवमां काली मात ।

---

1. वैष्णव,शैव और अन्य धार्मिक मत, पृ. 163-64.

ऐसा कहा जाता है कि कृष्ण का मुंडन संस्कार आरासुर के अंबिका मंदिर में हुआ था. गुजराती कवि भाणदास, नाथभवान और दयाराम ने माता की गरबियाँ लिखी हैं, जिसे गुजरात की अमूल्य लोक सांस्कृतिक निधि समझा जाता है. यहाँ पर चैत्र और आश्विन मासीय नवरात्र महोत्सव मनाया जाता है, और माता की कृपा की प्रार्थना की जाती है.

इस प्रकार गुजरात में शैव और शाक्त मतों का सुंदर समन्वय हुआ है, जो गुजरात की धर्म सहिष्णुता का ज्वलंत प्रतीक है.

महानुभाव पंथ

महानुभाव पंथ वैष्णव संप्रदाय ही है. कृष्ण के अवतार रूप दत्तात्रय इस पंथ के स्थापक माने जाते हैं, पर वास्तव में चक्रधर नामक संन्यासी इस पंथ के प्रवर्तक है.[1] यह पंथ 13 वीं शती में विद्यमान था.

गुजरात के भरूच में हरपालदेव [चक्रधर] नामक एक ब्राह्मण राजा थे, उन्होंने सन 1263 में संन्यास लेकर महानुभाव पंथ की स्थापना की. चक्रधर के पट्ट शिष्य नागदेव भट्ट ने इस पंथ का काफी प्रचार एवं प्रसार किया. चक्रधर का साहित्य मराठी में उपलब्ध है. इस पंथ के अनुयायी महाराष्ट्र, खानदेश, मध्यप्रांत, पंजाब और गुजरात में व्याप्त हैं. महाराष्ट्र में यह पंथ मानुभाव पंथ, गुजरात में अच्युत पंथ और पंजाब में जयकृष्णी पंथ के नाम से पहचाना जाता है. इस पंथ का उपास्य देव कृष्ण है. भगवद गीता, सांप्रदायिक लीला चरित, लीला संवाद, सूत्रपाठ आदि मराठी में लिखे गये ग्रंथ इस पंथ के प्रमाणभूत ग्रंथ माने जाते हैं.

महानुभाव पंथी मंदिर में मूर्ति को नहीं रखते, पर चतुष्कोण या 'चोतरो' रखते हैं, इसे ही ईश्वर का प्रतीक समझा जाता है. वे काले कपड़े पहनते हैं और गले में चंदन और तुलसी की माला डालते हैं. इस पंथ के भक्त त्यागी और गृहस्थ वर्ग में बँटे हुए हैं. त्यागी वर्ग श्रेष्ठ है, गृहस्थ वर्ग चातुर्वर्ण्य को मानता है. इस पंथ में मांस भक्षण और शराबपान निषिद्ध समझा

---

1. वैष्णव धर्मनो संक्षिप्त इतिहास, दु.के. शास्त्री, पृ. 312.

जाता है. ये लोग शवों को गाड़ते हैं .

इस प्रकार महानुभाव पंथ की अपनी निजी विशेषता है.

रामानंदी संप्रदाय

रामानंद [सं. 1356-1467 वि.] ने रामानंदी संप्रदाय की स्थापना की थी. वे निर्गुणवादी संत थे. निर्गुणमत की नींव उन्होंने ही डाली, जिसका कबीर आदि संतों ने प्रसार एवं प्रचार किया. उनके संबंध में कहा गया है -

भक्ति द्राविड ऊपजी लाये रामानंद ।
परगट किया कबीरने सप्त द्वीप नव खंड ।।

इस संप्रदाय के संतों ने राम-भक्ति का संदेश गुजरात के कोने कोने में फैलाया है. सौराष्ट्र के प्रत्येक देहात में रामानंदी पंथ का मंदिर है. पाटीदार, लोहार और बढई जैसी जातियों में इस संप्रदाय का विशेष प्रचलन है.

रामानंद का जन्म सं. 1356 वि. माघ शुक्ल सप्तमी के दिन प्रयाग में हुआ था. इनके पिता का नाम पुण्यसदन एवं माता का नाम सुशीलादेवी था. इन्होंने भारत की यात्राएँ करके काशी में पंचगंगा घाट पर अपना मुख्य मठ स्थापित किया था. सं. 1467 वि. में काशी में उनका देहावसान हुआ.

इस संप्रदाय में दिगम्बर, निर्वाणी, निर्मोही, खाकी, निरावलम्बी, संतोषी, महानिर्वाणी आदि सात अखाड़े होते हैं. गुजरात के प्रमुख नगरों में इस संप्रदाय के अखाड़े हैं.

इस संप्रदाय के आराध्य देव राम है. ये विपुल लावण्य शक्ति और शील के केन्द्र हैं. संसार के एक मात्र कर्ता, पालक एवं संहर्ता वे ही हैं. जीव इनका ही शेष है. इस संप्रदाय में ज्ञानपूर्ण भक्ति को मोक्ष का साधन माना गया है .

पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, परशुराम चतुर्वेदी आदि विद्वानों ने रामानंदका संबंध रामानुजी संप्रदाय से जोड़ा है. [1]

रामानंद ने गुजरात की यात्रा भी की थी. इन्होंने द्वारका, सिद्धपुर, गिरनार और आबू जैसे स्थानों में रामभक्ति का प्रचार किया था. गुजरात के कवियों पर भी रामानंदी संप्रदाय का विशेष प्रभाव है. भालण, मांडल, भोजा, प्रीतम, छोटम आदि के साहित्य में रामानंदी संप्रदाय का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है.

कबीर पंथ

कबीरदास पंथ या संप्रदाय की स्थापना के विरोधी थे, पर इनके शिष्यों ने प्रचार एवं प्रसार हेतु कबीर पंथ की स्थापना करना उचित समझा. कबीर पंथ की प्रधानतः तीन शाखाएँ हैं - ` काशी शाखा `, ` धर्मदासी या छत्तीसगढ़ी शाखा ` एवं ` धनौती शाखा `. ` काशी शाखा ` के संस्थापक सुरत गोपाल, ` धर्मदासी ` शाखा के संस्थापक धर्मदास तथा ` धनौती शाखा ` के प्रवर्तक भगवान गोसाई माने जाते हैं. ` काशी शाखा ` की गद्दी शिष्य परंपरागत और ` धर्मदासी शाखा ` की गद्दी वंशपरंपरागत है. इस पंथ का प्रचार उत्तर प्रदेश से लेकर मध्य प्रदेश, उड़ीसा, गुजरात, काठियावाड, बिहार आदि प्रदेशों तक हुआ है.

गुजरात के वैष्णव कवियों पर जहाँ वल्लभाचार्य एवं उनके पुत्र विट्ठलनाथ का प्रभाव है, वहीं यहाँ की संत-काव्य परंपरा पर कबीर का बहुत ही गहरा प्रभाव घोषित किया गया है. किंवदंती तो यहाँ तक है कि कबीर अपने पुत्र के साथ सं. 1564 वि. में गुजरात प्रवास के लिए आये थे और उन्होंने यहाँ के प्रसिद्ध स्थलों की यात्राएं की थीं. [2] भृगुकच्छ से सात मील दूर आये हुए ` कबीरवड ` की कथा का संबंध उनके इसी प्रवास से जोड़ा जाता रहा है. विद्वानों का यह मानना है कि कबीर का गुजरात में आगमन संदिग्ध हो सकता है, पर मध्यकालीन गुजराती संत साहित्य पर कबीर का जो प्रभाव

---

1. साहित्य कोश भाग-1 सं. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 647- 648.
2. गुजरात के हिंदी गौरव ग्रंथ- डॉ. अंबाशंकर नागर, पृ. 7.

पड़ा है, उसे नकारा नहीं जा सकता.[1]

गुजरात के सुप्रसिद्ध संत अखा पर कबीर का गहरा और व्यापक प्रभाव पड़ा है. इनके अतिरिक्त दादू, प्राणनाथ, भाणदास, रवि साहब, खीम साहब, मोरार साहब, भीकम, होथी, जीवण, धीरो, निरांत, आलोच्य कवि करुणासागर, भोजो, मनोहर, छोटम, दीन दरवेश, अर्जुन, अनवर आदि संतों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है.

गुजरात में कबीर पंथ की स्थापना धर्मदासी साधुओंने की थी. वे साधु मध्यप्रदेश से निकल कर खानदेश होते हुए गुजरात में आये और उन्होंने सूरत में सगरामपुर में कबीर संप्रदाय का मंदिर बनवाया. सूरत के मंदिर में कृष्णदास नामक महंत सं. 1765 वि. में गद्दी पर थे.[2] गुजरात के सूरत, भड़ौच, वडोदरा, खंभात, अहमदाबाद, नडियाद, मोरबी, भावनगर, राजकोट और जुनागढ में धर्मदासी कबीर पंथ की गद्दियाँ हैं. काशी शाखा के मंदिर वडोदरा, सूरत एवं अहमदाबाद में हैं.

वैश्य और शुद्र इस पंथ के अनुयायी हैं. इस पंथ में ब्राह्मण और क्षत्रिय भी हैं. कबीरपंथी जेठ शुक्ल 15 को कबीर जयंती और कार्तिक शुक्ल 15 को मगहर संवत्सरी मनाते हैं.

गुजरात में कबीरपंथ की कई उपशाखएं विद्यमान हैं. राम कबीरिया, संत कबीरिया, निर्वाण साहब की परंपरा, निरांत, दादू, राधास्वामी, नानक, सतनामी, टकसारी, रविदासी, निरंजन, दान कबीरिया, मंगल कबीरिया, हंस कबीरिया आदि पंथ मूल कबीरपंथ से उदभवित हुए हैं.

इस प्रकार कबीर पंथ ने अपने साहित्य एवं सिद्धान्तों के द्वारा गुजरात के साहित्य एवं जनजीवन को नयी उर्जा प्रदान की है.

दत्त संप्रदाय

महाराष्ट्र में 15 वीं शती में दत्त संप्रदाय का प्रचलन रहा. दत्त

---

1. गुजरात के हिन्दी गौरव ग्रंथ- डॉ. अंबाशंकर नागर, पृ. 7.
2. कबीर संप्रदाय- किशनसिंह चावड़ा, पृ. 141.

भगवान की मूर्ति त्रिमूर्ति है, जिसमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश सम्मिलित हैं. इस संप्रदाय की प्रधान विशेषता है सगुणोपासना-भक्ति. गुजरात में रंग अवधूत महाराज ने दत्त उपासना को घर घर तक पहुँचाया. रंग अवधूत के गुरु वासुदेवानंद सरस्वती महाराज ने दत्त संप्रदाय की प्रशंसनीय सेवा की है.

दत्त संप्रदाय के भक्त ईश्वर को दत्त स्वरूप में देखते हैं. रंग अवधूत महाराज ने ' अवधूती मौज ' नामक हिन्दी रचना संग्रह में ' धरती का बना सिंहासन, छत बादल तरु फैला, मारुत मंदा चमर डुलावे, बैठे बादशाह रंग अजब दिखाये ' पंक्तियों में अपनी मस्ती को प्रगट किया है. मध्य एवं दक्षिण गुजरात में दत्त भगवान के अनेक मंदिर विद्यमान हैं. इस संप्रदाय का प्रमुख पीठ नारेश्वर है. गुजरात में दत्त संप्रदाय ने आध्यात्मिकता के प्रचार के साथ ही जनहित का कार्य भी किया है.

दादू पंथ

दादू पंथ की स्थापना संत दादू ने की थी. यह पंथ ब्रह्म संप्रदाय या पर-ब्रह्म संप्रदाय से भी पहचाना जाता है. दादू के आदि गुरु परब्रह्म थे. तत्कालीन सम्राट अकबर और उनके दरबारी बीरबल आदि दादू पंथ से प्रभावित थे. दादू के पश्चात् यह पंथ खालसा, नागा, उत्तरगढी, विरक्त, खाकी आदि उपसंप्रदायों में बँट गया.

दादू के प्रमुख शिष्यों की संख्या 52 है. सुंदरदास, रज्जब गरीबदास, जगजीवन, फकीरदास आदि इनके प्रमुख शिष्य रहे. दादू पंथ में जितने कवि हुए उतने निर्गुणधारा के किसी भी संप्रदाय में नहीं हुए, और उनकी-सी गुणवत्ता का साहित्य भी नहीं मिल पाता. दादू ने बीस हजार पद, साखियाँ एवं पदों की, सुंदरदास ने 42 ग्रंथों की और गरीबदास ने 15 ग्रंथों की रचना की थी.

दादू पंथी साहित्य में ब्रह्म को शून्य सहज सत्य, निर्वाण, परमपद, आदि नामों से पहचाना जाता है. परमतत्व अनिर्वचनीय है. यह जगत ब्रह्ममय है. ब्रह्म जगत का निमित्त एवं उपादान है.

दादू ने भारत की यात्राएं की थीं. दादूपंथी जयपुर, अलवर, मारवाड, बीकानेर मेवाड़, पंजाब एवं गुजरात आदि स्थानों में पाये जाते हैं. दादू पंथ की प्रमुख गद्दी नराणा [राजस्थान] में है. दादू का जन्म गुजरात में हुआ, पर उनका कार्यक्षेत्र राजस्थान रहा है. दादू ने कुछ रचनाएं गुजराती में भी की हैं.

राधावल्लभी संप्रदाय

राधावल्लभी संप्रदाय के स्थापक गोसाईं हित हरिवंश थे. 'हित' उनका उपनाम था, इसलिए इस संप्रदाय को हरिवंशी संप्रदाय भी कहते हैं. हित हरिवंश [सं. 1558-1608 वि.] कृष्ण की वंशी के अवतार माने जाते हैं. एक बार जब वे अपने निवासस्थान देवबंद [सहारनपुर] से वृंदावन जा रहे थे, तब रास्ते में एक ब्राह्मण ने इन्हें अपनी दो कन्याएं और एक कृष्ण-मूर्ति भेंट दीं. वृंदावन जाकर इन्होंने उस मूर्ति को राधावल्लभ नाम से स्थापित किया और उस स्थान पर एक मंदिर बनवाया. कहा जाता है कि स्वयं राधिका ने इन्हें वृंदावन जाकर स्वतंत्र संप्रदाय स्थापित करने का आदेश स्वप्न में दिया था. सं. 1590 वि. में राधावल्लभ की मूर्ति का पाटोत्सव हुआ था. इस संप्रदाय ने काव्य और संगीत का संरक्षण किया एवं उन्हें प्रोत्साहन भी दिया.

राधावल्लभी संप्रदाय में विधि-निषेध के लिए कोई स्थान नहीं है. राधा के चरणकमल की उपासना और राधा कृष्ण के केलि-कुंज की खवासी [चाकरी] करना ही भक्त का कर्तव्य समझा जाता है. इस संप्रदाय में राधा की प्रधानता है और कृष्ण का स्थान गौण है. इसमें प्रेम की ही प्रधानता है. इस मार्ग में संयोग का महत्त्व है. भक्त राधा-कृष्ण को अभिन्न तत्त्व मानते हैं, इन्हें प्रेमरूप, प्रेम के कारण और कार्य भी माना जाता है.

गुजरात में प्रेमलक्षणा भक्ति के कवि नरसिंह महेता, मीरां एवं दयाराम के पदों में इस संप्रदाय का थोड़ा-सा प्रभाव दिखाई देता है.

रवि-भाण संप्रदाय

गुजरात में कबीर पंथी परंपरा अक्षुण्ण है. गुजरात में राम कबीरिया, संत कबीरिया और निर्वाण साहब की परंपरा नामक तीन भागों में कबीर पंथ बिखरा हुआ मिलता है. रवि-भाण संप्रदाय रामकबीरिया शाखा की एक उप-शाखा है. इस पंथ की प्रधान गद्दियाँ शेरखी, जामनगर और रांपर [कच्छ] में हैं. आज भी पूरे गुजरात में इसके पदों को आनंद के साथ गाया जाता है. लोहाणा, कुंजडा, बढई चारण आदि लोग इस पंथ के अनुयायी हैं. इस संप्रदाय के संत अपने नाम के पीछे ' साहब ' अथवा ' दास ' शब्द लगाते हैं. वे जीवित समाधि लेते हैं.

प्रणामी संप्रदाय

प्रणामी संप्रदाय के मूल प्रवर्तक देवचंद्रजी थे, जिन्होंने प्रणामी पीठ की स्थापना जामनगर में सं. 1687 वि. कार्तिक मास में की थी, परंतु इसके प्रसार और प्रचार का श्रेय स्वामी प्राणनाथ [सं. 1678-1751 वि.] को ही मिलता है. साहित्य और समाज में यह संप्रदाय विभिन्न नामों से अभिहित है. इस संप्रदाय को निजानंदी संप्रदाय और प्रणामी संप्रदाय के अतिरिक्त धामी पंथ अथवा धामी संप्रदाय, मेहराज पंथ, चाकला पंथ, खिजड़ा पंथ, प्राणनाथी संप्र-दाय, परनामी संप्रदाय, परिणामी संप्रदाय नाम से भी पहचाना जाता है.[1]

देवचन्द्रजी ने मूल ' तारतम्यवाणी ' की रचना की थी. स्वामी प्राणनाथ ने ' होशवाणी और जोशवाणी ' में आध्यात्मिक रचनाओं का प्रणयन किया है. करुणावती कृत ' तारतम्य सागर ' में दार्शनिक विचार व्यक्त हुए हैं. लालदास की ' बीतक ' एक मौलिक देन है, जिसमें जीवनानुभव व्यक्त हुए हैं.

इस पंथ के आचार्यों ने सर्वधर्म को एक मानने का उपदेश दिया है. इसके लिए प्राणनाथ ने उत्तर भारत की यात्राएं भी की थीं. इस पंथ की प्रधान गद्दियाँ पन्ना [बुंदेलखंड] जामनगर और सूरत में हैं. जामनगर की

---

1. प्राणनाथ संप्रदाय एवं साहित्य, डॉ. नरेश पंड्या, पृ. 141.

गद्दी गृहस्थ गद्दी और सूरत की गद्दी फकीरी कहलाती है. इस पंथ के अनुयायी तुलसी की माला पहनते हैं, ललाट पर कुंकुम का खड़ा तिलक लगाते हैं. ये मूर्ति पूजा के विरोधी हैं.

सर्वधर्म समन्वय की भावना इस पंथ की अपनी निजी विशेषता है. सूरत, जामनगर, अहमदाबाद और अन्य नगरों में प्रणामी पंथ के 85 मंदिर विद्यमान हैं. गुजरात में पाटीदार, कायस्थ, बनिया, राजपूत आदि इस संप्रदाय के भक्त हैं.

रामस्नेही संप्रदाय

रामस्नेही संप्रदाय की स्थापना सं. 1798 में जोधपुर के स्वामी रामदास ने की थी. यह संप्रदाय मूर्तिपूजा का विरोधी है. इसमें दिन में पाँच बार निराकार ईश्वर की आराधना होती है. जाति पाँति का भेदभाव इसमें नहीं बरता जाता, और सदाचार पर विशेष बल दिया जाता है. [1] गुजरात में इस संप्रदाय की शाखाएँ अहमदाबाद, सूरत, वलसाड आदि स्थानों पर पाई जाती हैं .

इस संप्रदाय के भक्त गले में माला धारण करते हैं और माथे पर श्वेत तिलक लगाते हैं. ये मिट्टी के बर्तन में भोजन करते हैं और काठ के कमंडल में जल पीते हैं. ये अहिंसा के परम उपासक हैं. चालीस दिनों की कठोर कसौटी के बाद इस पंथ में प्रवेश मिल सकता है. पंथ संचालन एवं संगठन के लिए बारह व्यक्तिओं की एक समिति होती है.

राजस्थान के शाहपुरा, रैण और खेड़ापा इस पंथ के प्रमुख केन्द्र हैं. रैण शाखा के प्रथम आचार्य दरिया साहब [सं. 1733 वि.] खेड़ापा शाखा के प्रथम आचार्य हरिरामदास और शाहपुर शाखा के प्रथम आचार्य रामचरन [सं. 1776 वि.] थे.

रामस्नेही शब्द का सांप्रदायिक अर्थ दो तरह से किया गया है,

---

1. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - डा. रामकुमार वर्मा, पृ. 288.

राम से स्नेह करनेवाला अथवा राम जिससे स्नेह करते हैं वह. इस संप्रदाय के मंदिरों को रामद्वारा कहते हैं. गुजरात में खेड़ापा शाखा के रामद्वारा अहमदाबाद और वडोदरा में हैं. शाहपुर शाखा के पाँच रामद्वारा सूरत में हैं.[1] इस संप्रदाय में निम्नलिखित नियमों का पालन होता है -[2]

1. निर्गुण निराकार एक रामजी का ही इष्ट रखना.
2. वेद, श्रुति, स्मृति, गुरुवाणी, शास्त्र, पुराण को मानना और सदविद्या का प्रचार करना.
3. ईश्वर को अर्पण किया हुआ प्रसाद ग्रहण करना.
4. काम, क्रोध, लोभ, मोह, रागद्वेष, अभिमान, ईर्ष्या, निंदा आदि का त्याग कर अंतःकरण शुद्ध रखना, संयम नियम से रहना और स्त्री मात्र को माता-बहिन समझना.
5. अपने सर्व व्यवहारों को ईश्वराधीन जानना, और हिंसा रहित सत्य धर्मयुक्त सात्त्विक उद्यमी होना.

इस प्रकार उक्त संप्रदाय का प्रचलन एवं प्रभाव गुजरात के जनजीवन पर स्पष्ट देखा जाता है .

निरांत संप्रदाय

निरांत [सं. 1803-1908 वि.] ने अपना संप्रदाय चलाने हेतु अपने सोलह शिष्यों के घरों में अपनी चरण पादुकाएँ प्रस्थापित करायी थीं. नरेरदास, दयालदास, गोविंदराम, मंछाराम, शामदास, मायाबाजी, सुमानसिंह, माधवराम, खुशालदास, बावाभाई, बापूसाहब गायकवाड, भीखाभाई, रामदास, वणारसीमाँ, मंछाराम और केशवदास नामक इनके सोलह शिष्य थे. वणारसीमाँ के उपरांत गिरिजाबाई और जमनाबाई नामक शिष्याएं भी थीं.

---

1. रामस्नेही संप्रदाय की दार्शनिक पृष्ठभूमि-डॉ. शिवाशंकर पाण्डेय, पृ. 62, 68.
2. वही, पृ. 98.

बापूसाहब ने वड़ोदरा में और गोविंदराम ने सूरत में निरांत संप्रदाय की गद्दियाँ स्थापित कीं . इसके उपरांत पादरा, भायली, मियागाम, देथाण आदि स्थलों में निरांत संप्रदाय की गद्दियाँ विद्यमान हैं.

गोविंदराम के चार शिष्य थे- रामदास, गणपतराम, रणछोड़दास और वांसजीभाई. गणपतराम ने हिंदी पदों की रचना की है. अर्जुन भगत ने भी हिंदी पदों की रचना की है .

इस संप्रदाय में गुरु एवं नाम महिमा का महत्त्व अधिक है. पाटीदार, वैश्य तथा शूद्र इस संप्रदाय के शिष्य हैं. किशनसिंह चावडा के पिता गोविंदसिंह चावडा भी निरांत संप्रदाय के अनुयायी थे. इन्होंने ' तत्त्वसार भजनावलि ' नामक भजन संग्रह की रचना की थी, जिसका -

" सबसे पहले मनको मुंडो,
पीछेसे आतमको ढूँढो . "

नामक भजन भक्तजन बड़े चाव से गाते थे. [1] स्पष्टतः इस संप्रदाय का प्रभाव जनजीवन पर पड़ा ही है.

कायम पंथ

कायम पंथ की स्थापना करुणासागर ने की थी . इस पंथ को सत कैवल संप्रदाय, कैवल ज्ञान संप्रदाय, ज्ञान संप्रदाय और कुबेर पंथ या कुवेर पंथ भी कहते हैं. अपने पंथ की बात करते हुए आलोच्य कवि कहते हैं -

कायमपंथ हमारड़ा, कैवल का देदार,
सत कुवेर है आगवा, आवोने कोई यार । [2]

---

1. कबीर संप्रदाय - किशनसिंह चावड़ा, पृ. 167.
2. हंस तालेवा 52 / 18.

अगाध बोध ग्रंथ में भी इन्होंने इस ढंग से कहा है -

कायमपंथ हमारा कहाइ, कायम करता सदा रहाइ,
नामरूप अविचल मम पंथा, सदा मोक्ष पद कैवल कंथा ।[1]

करुणासागर के मतानुसार सत् कैवल निजपति से ही संसार की उत्पत्ति हुई है और उसी में इसका लय भी होता है. हम सब उसी निजपति के अंश हैं, हमारा मूल धाम कैवल धाम है और परमगुरु की कृपा के सिवा उस धाम में जाना असंभव है. सत् कैवल कर्ता ने संसारको अंश-अंशी पद की एकता का लक्ष्य दिखाने के लिए करुणासागर को परम गुरु के रूप में इस संसार में भेजा है .

कायम पंथ में ` निजपति ` के लिए आद्य, सकर्ता, स्वराज, करुणेश एवं कैवल विशेषणों का उपयोग किया जाता है, जिनका अर्थ इस प्रकार किया जाता है -

आद्य- निजकर्ता को आद्य कहने का यह तात्पर्य है कि सृष्टि के प्रारंभ में निजकर्ता स्वयं अकेले थे, इनके पहले कोई नहीं था.

सकर्ता-निजकर्ता ने स्वयं अकेले होते हुए भी शुद्ध संकल्प के द्वारा चौदह लोक को समस्त जीवों से स्फुरित किया इसलिए उन्हें सकर्ता कहा जाता है.

स्वराज-निजकर्ता के द्वारा निर्मित इस जगत पर निजकर्ता का अपना अधिकार होता है, इसमें और कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता. इस समान राज्य को स्वराज कहा जाता है.

करुणेश -निजपति चौदह लोक में एक समान करुणा बहाते हैं, इसलिए उन्हें करुणेश कहा जाता है .

कैवल- कैवल से तात्पर्य है सर्वसत्ता के त्रिगुणातीत एवं उपाधि रहित स्वरूप का. परब्रह्म प्रकाश स्वरूप है, अतः यह कैवल शब्द उसका विशेषण माना गया है.

---

1. अगाधबोध 81 / 14.

परिधान और आचरण -

कायम पंथ की प्रधान गुरु गद्दी एवं मंदिर सारसापुरी जिला खेड़ा में है. इस पंथ के महंत सफेद वस्त्र धारण करते हैं एवं सफेद पगड़ी बाँधते हैं. साधु-संत गुलाबी वस्त्र धारण करते हैं एवं गुलाबी पगड़ी बाँधते हैं. भक्तजन कंठी पहनते हैं. भक्त जब गुरु से मिलते हैं तो ` सत कैवल साहेब `, संत जब परस्पर मिलते हैं तो ` अहो जय कैवल हंसा ` , भक्तजन जब परस्पर मिलते हैं तो ` सत् कैवल परमात्मा ` कहकर परस्पर अभिवादन करते हैं .

कायम पंथ का ध्वज भालतिलक रूप है, जिसका आकार इस प्रकार का होता है - ▲ बोर्डर श्वेत रंग की होती है और बीच में लाल रंग होता है. भक्त, साधु-संत, महंत एवं आचार्य अपने भाल पर ▲ तिलक करते हैं. अग्रभाग की तीक्ष्णता जीवन में अणिशुद्धता की आग्रही है .

करुणासागर कहते हैं कि हमारे शरीर के हाथ, पैर, नाक, अंगुली, आँख, लिंगस्थान आदि अणिअग्र हैं, जिह्वा, कुच और रोयें भी अणिअग्र हैं, पेड़ के पत्ते फलादि अणिअग्र हैं, प्राणियों के मुख, पूँछ सींग आदि अणिअग्र हैं, पक्षियों की चोंच पंख आदि अणिग्रह हैं. [1] इनका मानना है कि यह अणिअग्र भालतिलक इंद्रियों की वासना एवं कालको छेदता है. [2]

आलोच्य कवि का कहना है कि पुरुष के बाये अंग में चन्द्र एवं दाहिने अंग में सूर्य बहता है, ये दोनों भृकुटी के पास मिलकर आंतरिक भालतिलक बनाते हैं. जैसा तिलक आंतरिक शरीर में है, वैसा ही तिलक हमें बाह्य शरीर पर धारण करना चाहिए .

` नेमी बनो ` इस पंथ का मूल मंत्र है. इस संप्रदाय का मूल महामंत्र है - ` ॐ आद्य सकृत स्वराज करुणेश कैवल नमामि ` ।

साधु-संत एवं भक्तों के लिए कुछ नियम या मर्यादाएँ इस प्रकार हैं -

---

1. पंचमश्वसंवेदे कंद 3 / 66,67,82.

2. तिलकभाल भव तनकु वेधे, अणिअग्रे कालज क्रम छेदे । अगाधबोध 81/23.

1. साधु-संतों को नारी का त्याग करना ।
2. साधु-संतों को धन का स्पर्श नहीं करना ।
3. स्वर्णादि भौतिक पदार्थों को मिट्टी तुल्य मानना ।
4. रजोगुण रहित वस्त्र देह रक्षा के लिए धारण करना ।
5. इंद्रियों पर संयम रखना ।
6. भिक्षाटन के लिए अकेला नहीं जाना, पंथ के दूसरे मंदिरों में समूह में जाना ।
7. मंदिर में नारी से बात नहीं करना ।
8. हृदय में वैराग्य धारण करके परमगुरु की शरण में जाना जिससे कैवल्य पद की प्राप्ति हो ।
9. साकुट का संग नहीं करना ।
10. झूठ, प्रपंच, चोरी और ` हेरी ` [1] का त्याग करना ।

ये नियम सांप्रदायिक होने पर भी सर्वजन के लिए आचरण में लाने योग्य हैं .

कायम पंथ के कुल 80 मंदिर विद्यमान हैं, जिनमें से 77 गुजरात, 1 राजस्थान, 1 उत्तर प्रदेश और 1 मध्य प्रदेश में हैं. सबसे अधिक मंदिर खेड़ा जिले में हैं. सभी मंदिरों का स्थान परिशिष्ट में दिया गया है, फिर भी जिज्ञासावश जिला वार मंदिर इस प्रकार हैं -

वलसाड	2	अहमदाबाद	5
सूरत	8	साबरकांठा	2
भरूच	6	महेसाणा	4
वडोदरा	12	सौराष्ट्र	2
खेड़ा	28	मध्यप्रदेश	1
पंचमहाल	8	उत्तर प्रदेश	1
		राजस्थान	1
		कुल --	80

---

1. हेरी - छिपकर देखना .

इन मंदिरों में महंत एवं साधु-संत रहते हैं और जन समाज को उपदेश देने का कार्य करते हैं. इन मंदिरों में गुरु गद्दी एवं गुरु- मूर्ति की स्थापना होती है, और उनका विधिवत पूजन-अर्चन नियमित रूप से होता है .

सुबह 5 बजे मंगला आरती
7 बजे श्रृंगार आरती
7-30 बजे स्तुति
10-30 बजे भोग, थाल
12 बजे विराम
शाम को 7 बजे आरती, कीर्तन, धून आदि
रात को 9 बजे शयन

नूतन वर्ष, गुरु पूर्णिमा , एकादशी, गुरु जन्म दिन, गुरु कैवलधाम गमन दिन आदि अवसरों पर विशिष्ट कार्यक्रमों का आयोजन होता है. सारसा, उमरा, वडोदरा आदि मंदिरों में प्रतिदिन भोजन के समय उपस्थित भक्तों को भोजन के लिए बिनती की जाती है. इस पंथ के पथिकों की संख्या 60 लाख से भी अधिक है . इस पंथ का अनुसरण करनेवालों में पटेल, पंचाल, काछिया पटेल, ब्राह्मण, बनिया, बढई, खलासी, पारसी, मुसलमान आदि का समावेश होता है. गुजरात के कोने कोने में इस पंथ के पथिक विद्यमान हैं. इस संप्रदाय के भक्तों का हर पाँच साल पर एक सम्मेलन होता है .

सारसा में कैवल संप्रदाय द्वारा प्रस्थापित ज्ञान संप्रदाय केलवणी खाता द्वारा संचालित वेद उपनिषदादि का ज्ञान देनेवाला धार्मिक विद्यालय भी है. इस विद्यालय में अभ्यास पूरा करके परीक्षा में उत्तीर्ण होनेवाले ` कैवलज्ञान विशारद ` को संप्रदाय के विभिन्न मंदिरों में महंत के रूप में नियुक्त किया जाता है. ये महंत आजीवन ब्रह्मचारी होते हैं. आशय यह कि इस संप्रदाय के मंदिरों में ज्ञानी, कर्मठ एवं समर्पित व्यक्ति को ही धर्म प्रचार का कार्य सौंपा जाता है. वेद उपनिषदों का विधिवत अध्ययन-अध्यापन संस्था की ओर से

---/---/---/

संचालित विद्यालय द्वारा क्रियात्मक रूप में कराया जाना अपने आपमें अनुपम एवं प्रशंसनीय कार्य है, जो केवल कायम पंथ को ही गौरवान्वित नहीं करता वरन् गुजरात की धार्मिक मनोवृत्ति की ठोस अभिव्यक्ति भी करता है .

कायम पंथ के प्रधान नगर सारसा में करुणासागर के भव्य मंदिर के उपरांत सत् कैवल गौशाला, परमगुरु का समाधि मंदिर एवं सत्संग के लिए विशाल भजनशाला भी है. यह संप्रदाय 30 वर्षों से ' कैवल ज्ञानोदय ' नामक मासिक पत्रिका का संपादन करते हुए करुणासागर के उपदेश को आज भी घर घर पहुँचाने का पवित्र कार्य कर रहा है .

अन्य संप्रदायों के महंत साधु-संतों से आलोच्य कवि के संप्रदाय के महंत एवं साधु-संतों की यह विशेषता है कि वे सारसा के ज्ञान संप्रदाय की विद्या-पीठ से बाकायदा वेद उपनिषदादि पढ़े हुए होते हैं, इसलिए वे आधिकारिक रूप से समर्पित होकर भक्त समाज को कैवलधाम प्राप्ति की सच्ची राह दिखा सकते हैं. इस संप्रदाय के मंदिर महंतों की बपौती न होकर ट्रस्ट के द्वारा परिचालित होते हैं .

किसी भी व्यक्ति की मृत्यु होने पर इस संप्रदाय के द्वारा समाज-सुधार के अंतर्गत दिवंगत व्यक्ति की धार्मिक क्रिया के भाग रूप तीन दिनों का ' पारायण ' उचित रूप में सूचना देने पर संत पुरुष के द्वारा आयोजित होता है. सदगत व्यक्ति के आत्मा की शांति हेतु उसके सगे संबंधियों से भजन-कीर्तन करवाकर उन्हें समाज में सुधार के रूप में प्रस्थापित करने में भी यह संप्रदाय मदद करता है .

कायमपंथ का कार्य वास्तवमें प्रशंसनीय एवं सराहनीय है. यह निःशंक रूप से कहा जा सकता है कि गुजरात का जन-जीवन इस पंथ के साधु-संतों एवं आचार्यों के उपदेशों से स्फीत हुआ है. करुणासागर के उपरांत रघुराम महा-राज परमहंस सुखानंद आदि संतों ने रानीपरज विस्तार में जाकर अनपढ़ अंध विश्वासों में डूबी हुई गरीब प्रजा के जीवन में न केवल धार्मिकता को सँजोया, वरन् उन्हें आदमी के रूप में रहने के लिए उनकी आदतों को सुधारने का एवं

उनकी आत्मशक्ति जगाने का भगीरथ कार्य भी किया है. और उन्हें आजादी के राष्ट्रीय यज्ञ में अपना यशस्वी योगदान देने के लिए भी प्रेरित किया है . सुखानंद ने उन दिनों ख्रिस्ती मिशनरियों की धर्म परिवर्तन की प्रवृत्ति का जोरदार विरोध किया, इतना ही नहीं सन् 1942 की क्रांति के समय अशोक महेता, अच्युत पटवर्धन, जयप्रकाश नारायण, बी, के. मजमुंदार , छोटाभाई डॉक्टर आदि महानुभावों को वड़ोदरा के कायमपंथ के करुणासागर मंदिर में तीन मास तक गुप्त रीति से रखकर न केवल अपने देशप्रेम का परिचय दिया वरन् देश के लिए सिर पर कफन बाँधकर रहने की साहसिक वृत्ति का भी परिचय दिया. सुखानंद का देशप्रेम हमेशा क्रियात्मक रहा है. सिखों को धर्म एवं देशप्रेम का उपदेश देने के लिए वे पंजाब का हर वर्ष भ्रमण करते थे .

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि इस पंथ ने हमारी प्राचीन परंपरा का अवलंबन करते हुए धर्म को समाज एवं राष्ट्र के उत्थान के रूप में ग्रहण किया है .

इस संप्रदाय में अब तक सात आचार्य हो गये हैं. सम्प्रति सप्तम कुवेराचार्य श्री अविचलदासजी सारसा की प्रधान गद्दी पर विराजमान हैं. इन सात आचार्यों में से तीन के परिचय तो उपलब्ध हैं, किन्तु चार आचार्यों के कार्यकाल की मात्र तिथियाँ ही प्राप्त हो पायी हैं .

करुणासागर प्रथम आचार्य हैं, जिनका परिचय उपलब्ध सामग्री के आधार पर यथास्थान दिया गया है.

द्वितीय आचार्य के रूप में मेवाड़ा बढई श्री नरवेदसागर या नारायणदास सं. 1934 से सं. 1946 वि. तक सारसा की प्रधान गद्दी पर विराजमान रहे. ये करुणासागर के अनन्य भक्त थे. इनके प्रेम की एकनिष्ठा के कारण ही करुणासागर ने इन्हें अपनाया था. इन्होंने ` सिद्धांत बावनी ` नामक ग्रंथ की रचना की है, जिसमें ॐ को अक्षर का उत्पत्ति स्थान माना गया है और बावन अक्षरों का उपयोग करके ` कायम पद ` प्राप्त करने के लिए परमगुरु करुणासागर की शरण में जाने की बात बताई है . वे कहते हैं --

जैंही चाहत जंब प्रभु पद कोइ, शरण परम गुरुको ग्रहो सोइ,
करम अदल फदल करे जेता, जब गुरु मीले सकृत पतिवेता ।

सिद्धांत बावनी अक्षर 42/7

नारायणदास ने सारसा में करुणासागर का मंदिर बनवाकर उसमें सं. 1946, वैशाख शुक्ल 13 के दिन करुणासागर की मूर्ति की प्रतिष्ठा की थी. इन्होंने बोरसद एवं सुरकुवा में करुणासागर के मंदिर बनवाये . ये करुणासागर के कृपापात्र थे और उनके बाद कायमपंथ की गद्दी पर द्वितीय कुवेराचार्य के रूप में आरूढ हुए थे.

तृतीय आचार्य के रूप में बलदेवदासजी सं. 1946 से सं. 1963 तक, चतुर्थ आचार्य के रूप में भगवानदास जी सं. 1963 से सं. 1968 तक, पंचम आचार्य के रूप में प्रयागदास जी सं. 1968 से 1979 तक तथा षष्ठ आचार्य के रूप में शीतलदास जी सं. 1979 से 2028 तक सारसा की प्रधान गद्दी पर विराजमान रहे. ये सभी आचार्य पटेल थे. इनके कार्यकाल के अतिरिक्त अन्य कोई सूचना प्रधान मंदिर से उपलब्ध नहीं हो पायी. अतः सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि इन्होंने स्वतंत्र ग्रंथों की रचना न करके करुणा-सागर के ग्रंथों के आधार पर ही समाज को उपदेश देकर उस पंथ की परंपरा को निभाया होगा.

सप्तम कुवेराचार्य के रूप में श्री अविचलदासजी सं 2028 में केवल बीस वर्ष की आयु में गद्दी पर आये. ये अभी युवावस्था में ही हैं. इनका व्यक्तित्व बहुत ही प्रतिभा संपन्न है. इन्होंने विभिन्न दर्शनों और संप्रदायों का अध्ययन करके करुणासागर के बताये हुए मार्ग को प्रशस्त किया है. इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये अपने संप्रदाय को आधुनिक जीवन के संदर्भ में रखने और तदनुकूल परिवर्तन की दिशा को माननेवाले हैं. इनका मुख्य लक्ष्य धर्म,समाज और शिक्षा इन तीनों में संगति लाना है. सम्प्रति इस संदर्भ में इन्होंने दो योजनाएँ कार्यान्वित करने की कोशिश की है. प्रथम तो यह कि जहाँ करुणा-सागर का प्राकट्य हुआ था, उस स्थान पर मंदिर के पास ही एक ऐसे वृद्धाश्रम

की स्थापना करना, जहाँ अनाश्रित एवं अन्य वृद्ध रह सके और भजन-पूजन करते हुए अपना शेष जीवन सुधार सके. दूसरी योजना के अंतर्गत वे एक ऐसे गुरुकुल की स्थापना करना चाहते हैं, जहाँ बालमंदिर से लेकर स्नातकोत्तर तक के अध्ययन-अध्यापन की सुविधा रहे. इस गुरुकुल में प्राचीन परंपरा के आधार पर आधुनिक समाज की विभिन्न समस्याओं को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम निर्धारित किया जायेगा .

सप्तम कुबेराचार्य श्री अविचलदास जी धर्मोपदेश के अतिरिक्त अपना अधिक समय गाँव गाँव घूमकर समाज सुधार में व्यतीत करते हैं. इनके व्यक्तित्व में न तो अंधश्रद्धा या अतिश्रद्धा है और न अति बौद्धिकता ही. इन्होंने अपनी इसी मानसिकता के कारण तीन हजार युवकों का एक ऐसा संगठन तैयार किया है, जो इनकी योजनाओं को गति दे सके.

इन आचार्यों के अतिरिक्त इस संप्रदाय में अनेक साधुसंत हुए हैं, जिन्होंने करुणासागर के ग्रंथों का गहन अध्ययन करके समाज को दिशा प्रदान की है. जिनमें वृजलाल शास्त्री, छोटम शास्त्री, सुखानंद, तपस्वी रघुवीरजी, महंत विष्णुदास जी, महंत शांतिदासजी, महंत मोहनदास जी, अचरतबा तथा दो लिपिक भीखुभाउ और रामभाउ के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं.

वृजलाल शास्त्री

वृजलाल शास्त्री छोटम के ज्येष्ठ भाई थे. इन्होंने करुणासागर को अपना गुरु माना था. वे छोटम के साथ करुणासागर के साथ रहते थे. इन्होंने संस्कृत में ` करुणासागराष्टम् ` की रचना की है. वृजलाल शास्त्री और छोटम के करुणासागर से संबंध का वर्णन करते हुए अचरतबा कहती हैं --

वरजलाल आचारज छोटमदासजीनुं बंध,
एतले निज गुरु परमके, जीनके परम संबंध ।

अचरतसागर 8/8

छोटम शास्त्री

करुणासागर की सेवामें चार विद्वान भक्त हमेशा रहते थे, इनमें दो व्यक्ति दक्षिणी ब्राह्मण थे, और दो साठोदरा नागर ब्राह्मण थे. भीखुभाउ और रामभाउ मराठी भाषा के विद्वान थे, और छोटम शास्त्री तथा वृजलाल शास्त्री गुजराती के विद्वान थे.

छोटम शास्त्री का मूल नाम छोटालाल महाराज था. इनके पिता का नाम कालिदास था. इनका जन्म मलातज [ता. पेटलाद] में सं. 1868 वि. में हुआ था. इनके गुरु चाणोद निवासी पुरुषोतम योगी थे, पर इनके प्रश्नों का समाधान न होने से इन्होंने पूर्व जन्म के संस्कारों के कारण एक ही भेंट में करुणासागर को अपना गुरु मान लिया.

इन्होंने ' भक्ति भास्कर ' और ' बोध सुधा ' नामक ग्रंथों का प्रणयन किया है. इन्होंने हिन्दी में 150 से अधिक साखियों का निर्माण किया है. इन साखियों को कबीरादि संतों की तरह 10 अंगों में विभाजित किया गया है. जनसमाज किस प्रकार वेदों के अर्थों में उलझकर मूल कर्ता को भूल गया था उसका वर्णन करते हुए वे कहते हैं कि -

> याहां ल्यौं ज्ञान वेदांत ग्रंथको, तामे अटके ज्ञानी,
> करता कैवल परमधाममें, ताकी खबर न जानी ।
>
> कैवल प्रकाश पृ. 246

करुणासागर की दिव्य विभूति से प्रभावित होकर छोटम ने तलाटी की नौकरी छोड़ दी, और इनके संग रहने लगे. इन्होंने करुणासागर के ग्रंथों का अध्ययन करके इनके सिद्धांतों को समझाते हुए पदों की रचना की है. वे सं. 1941 वि. की धनतेरस के दिन कैवलधामवासी हुए.

छोटम की वाणी में ज्ञान, भक्ति एवं वैराग्य कूट कूटकर भरा है. इनकी गुजराती रचनाओं की संख्या 40 से अधिक है. इन्होंने हिन्दी में साखियाँ और पदों की रचना की है. इनकी साखियों पर कबीर, रहीम

एवं करुणासागर का विशेष प्रभाव है. ` जीव को अंग ` में वे कबीर की तरह जीव के शिव बनने की घटना का वर्णन करते हुए कहते हैं --

जीव गया तुरिया पदे, जीव शिव हो जाय,
सिंधुमें सिंधव मिल्या, द्वैत भेद न रहाय । [1]

` दुरिजन को अंग ` में दुर्जन की दुर्जनता के स्थायित्व का वर्णन करते हुए वे कहते हैं -

दुरिजन सज्जन ना बने, कीजे कोटि उपाय,
धोवे नित-नित दूध से, काग हंस न थाय । [2]

छोटम शास्त्री करुणासागर के ग्रंथों को लिखने का कार्य भी करते थे.[3]

सुखानंद

सुखानंद का जन्म चांगा [ता. पेटलाद] में हुआ था. इन्होंने सोलह वर्ष की उम्र में दामोदरदासजी से दीक्षा ग्रहण की थी. बाद में इन्होंने कई वर्षों तक करुणासागर के ग्रंथों का अध्ययन किया. सुरकुवा [जिला खेडा] के औद्धवदासजी की आर्थिक मदद के द्वारा संस्कृत सीखने के लिए वे काशी, हरिद्वार और ऋषिकेष गये. बाद में वे उमरा पहुँचे, वहाँ महंत विष्णुदासजी ने उनकी अच्छी मदद की थी. उन्होंने ` कैवल ज्ञानोदय ` नामक मासिक पत्रिका का आरंभ किया. सं. 1977 में वे वडोदरा आये और ` करुणासागर ` मंदिर में रहे. इन्होंने करुणासागर के सत्रह ग्रंथों की गुजराती में टीका लिखी है. भक्तजन इन्हें ` कैवल वेत्ता ` कहते थे.

---

1. हिन्दी साहित्यको गुजरातके संत कवियोंकी देन - डॉ. रामकुमार गुप्त, पृ. 198.
2. वही, पृ. 198.
3. गुजरात के संतों की हिन्दी वाणी - डॉ. अंबाशंकर नागर, पृ. 329.

सुखानंद ने करुणासागर के ग्रंथों को प्रकाशित कराने का भगीरथ कार्य किया है. वे देशप्रेमी भी थे, जनसमाज में केवल भक्ति के अलावा वे देशप्रेम, सुधारवादी प्रवृत्ति, राष्ट्रीय एकता आदि के संदर्भ में अपना धर्मोपदेश दिया करते थे. सं. 1991 से 2000 वि. तक दो तंबू और एक छोटा सा सामियाणा लेकर इस कार्य हेतु उन्होंने देशाटन किया था.

तपस्वी रघुवीरजी

रघुवीरजी वाड़ाशिनोर के निकट स्थित खड़ गोधरा गाँव के निवासी थे. वे क्षत्रिय थे. उनका जन्म सं. 1825 वि. फाल्गुन शुक्ल अगियारस को हुआ था. वे करुणासागर को अपना गुरु मानते थे. हठिपुरा गाँव के जंगल में एक पेड़ के नीचे बैठकर बीस वर्ष तक उन्होंने तपस्या की थी. सूरत के पास उमरा नामक गाँव के पास तापी नदी में टूटे हुए जहाज की धार पर बैठकर उन्होंने तप किया था. सूरत जिले के लोग आज भी उन्हें गुरु के रूप में याद करते हैं. सं. 1876 वि. से लेकर सं. 1956 वि. तक वे उमरा में ही रहे. उन्होंने उमरा में करुणासागर का मंदिर बनवाया था, जिसकी नींव सं. 1938 वि. माघशर शुक्ल बीज को डाली गयी और सं. 1955 वि. पोष शुक्ल 12 शुक्रवार को उस मंदिर में करुणासागर की मूर्ति की स्थापना की गयी. मंदिर के पास रघुवीर जी की तप करने की जगह आज भी सुरक्षित है. उनके तप से प्रभावित होकर सूरत के कलेक्टर ने उन्हें बंदूक का लायसन्स दिया था. अपने बीस शिष्यों के साथ वे उपदेशार्थ 'रानी परज' विस्तार में घूमते रहते थे. वे दिव्य विभूति थे. उन्होंने सं. 1956 जेठ शुक्ल 11 के दिन समाधि ली थी.

महंत विष्णुदासजी

महंत विष्णुदासजी का जन्म सांधियर [ता. ओरपाड, जिला सूरत] में हुआ था. इन्होंने करुणासागर के वचनों को आत्मसात किया था. इन्होंने कबीरदास के उपदेश का भी पान किया था. वे सुखानंद के साथ उमरा में रहते थे, और अपने सद्वचनों से जनसमाज का सुधार करते थे. वे धीर, वीर, गंभीर और ज्ञानी थे. वे उदार एवं दयालु थे.

शांतिदासजी

शांतिदासजी बचपन से ही विष्णुदास के साथ रहते थे, और आध्यात्मिकता की चर्चा किया करते थे. विष्णुदासजी इनके गुरु थे. गुरु प्रेरणा से इन्होंने करुणासागर के ग्रंथों का अध्ययन, मनन एवं चिंतन किया था. इन्होंने करुणासागर के ग्रंथों के प्रकाशन में भी अपना यशस्वी योगदान दिया था. सुखानंद के साथ रहते हुए वे उनकी सूचनानुसार धर्मोपदेश का कार्य करते थे.

महंत मोहनदासजी

मोहनदास जी अहमदाबाद के करुणासागर मंदिर के महंत थे. इन्होंने लक्ष्मणदासजी से दीक्षा ली थी. इन्होंने करुणासागर के ग्रंथों का अध्ययन,मनन एवं चिंतन किया था और उनकी टीकाएँ भी लिखी थीं. इन्होंने कायम पंथ का प्रचार एवं प्रसार किया.इन्होंने ` पंचीकरण ` नामक ग्रंथ की रचना की है.

अचरतबा

अचरतबा करुणसागर की अनन्य शिष्या थीं. इन्होंने करुणासागर के ग्रंथों का सम्यक् अध्ययन,मनन एवं चिंतन किया था.इन्होंने ` अचरत सागर ` नामक ग्रंथ की रचना की जिसमें इन्होंने 16 अचरत रूप प्रश्न पूछकर अंत में परम गुरु करुणासागर के सत कैवल सिद्धांत को सर्वोपरि माना है. कैवल पद प्राप्ति के लिए राह दिखानेवाले परमगुरु की आवश्यकता बताते हुए वे कहती हैं -

बिनु परमगुरु, पावत परम मोक्ष नहि कोय,
अचरत तब गुरु परमकु, आइ मीलो सब कोय ।

अचरत सागर कंद 12 / 34

इस प्रकार इन्होंने परमगुरु के कार्य एवं सिद्धांत को समझाने का प्रयत्न किया है .

श्रीखुभाउ और रामभाउ

श्रीखुभाउ और रामभाउ दोनों भाई करुणासागर के परम भक्त थे. वे पूणे के निवासी थे. वे दोनों व्यारानामक नगर में रहते थे और गायकवाड़ की ओर से व्यारा और सोनगढ तालुका की रक्षा करते थे.

एक बार वडोदरा के शियाबाग में जब करुणासागर कथा कह रहे थे तो उनकी अमृतमयी वाणी से प्रभावित होकर इन दोनों भाइयों ने उनसे भेंट की . करुणासागर ने इन्हें अधिकारी समझकर अंश-अंश की एकता का लक्ष्य समझाया. इन दोनों भाइयों ने अपनी मिलकत करुणासागर के चरणों में अर्पित कर दी थी. इन्होंने करुणासागर के ग्रंथों की मराठी में टीका लिखी है, जिनकी पांडु लिपियाँ उमराके करुणासागर मंदिर में सुरक्षित हैं.

इस प्रकार कायमपंथ ने गुजरात के जनजीवन को स्फीत किया है .

सारसा में स्थित श्री करुणासागर का भव्य मंदिर

स्वामीनारायण संप्रदाय

स्वामीनारायण संप्रदाय की स्थापना सहजानंद स्वामी ने की थी. उनका जन्म लखनऊ से चंपारण्य जाने के मार्ग में छपैया नामक नगर में सं. 1837 को चैत शुक्ल नवमी को रात के दस बजे हुआ था. उनकी माता का नाम भक्ति था. बचपन में सब उन्हें हरिप्रसाद या घनश्याम कहकर पुकारते थे. सं. 1849, आषाढ शुक्ल दसमी के दिन वे अयोध्यापुरी से निकले और सात वर्ष तक नीलकंठ नाम धारण करके विभिन्न स्थानों में घूमते रहे. सं. 1856, श्रावण कृष्ण षष्ठी के दिन वे सौराष्ट्र के लोज नामक गाँव में आये और मुक्तानंद स्वामी से मिले. पीपलाणा में उन्होंने रामानंद स्वामी से भी भेंट की. रामानंद स्वामी ने उनको उद्धव संप्रदाय में दीक्षित करके संप्रदाय के आचार्य का पद सौंपा, इसलिए इस संप्रदाय को उद्धव संप्रदाय भी कहते हैं. दीक्षित होने के बाद उन्होंने सहजानंद नाम धारण किया.

सहजानंद स्वामी ने धर्म का प्रचार शुरू किया. सौराष्ट्र और गुजरात के प्रमुख नगरों में स्वामीनारायण संप्रदाय के मंदिर विद्यमान हैं. उन्होंने अलग अलग मंडलों की स्थापना की और प्रत्येक मंडल को धर्म प्रचार के हेतु अलग-अलग जगह पर भेजा. ये मंडल भिक्षा माँगकर जो कुछ मिलता उससे अपना जीवनयापन करके बची हुई चीजें दान में देते थे. ये भजन, कीर्तन और उपदेश देकर सदाचार का प्रचार करते थे.

स्वामीनारायण संप्रदाय के साधुओं को बहुत ही कठोर नियमों का पालन करना पड़ता था. रात को दूर जाकर पलाथी लगाकर ध्यान करना, शरीर पर साँप और बिच्छू चढ़ जाय तो भी ध्यान में लगे रहना, रात को भजन करना, नींद आने पर चक्की पीसने बैठ जाना, पृथ्वी पर सोना, लाल वस्त्र दिखाई दे तो उपवास करना आदि नियमों का पालन साधुओं के लिए अनिवार्य था. इसके साथ ही सहजानंद स्वामी बड़े प्रेम से अपने हाथों से रसोई बनाकर साधुओं को भोजन कराते थे, और उन्हें भेट भी देते थे.

स्वामीनारायण संप्रदाय ने समाज-सुधार का कार्य भी किया है. इसके

द्वारा बालहत्या, हिंसायुक्त यज्ञ, सती प्रथा, जाति प्रथा तथा अन्य सामाजिक कुरूढियों का विरोध करते हुए, भक्ति भावनापूर्ण सदाचारी जीवन-यापन का सदुपदेश दिया गया है. इस संप्रदाय में मुसलमान लोग भी हैं. सुधारक प्रवृत्ति के कारण बम्बई के गवर्नर ज्हॉन माल्कम ने उनका सन्मान किया था.

यह संप्रदाय मूलत: वैष्णव संप्रदाय ही है. शिक्षापत्री में सहजानंद स्वामी ने स्वीकार किया है कि ` मतं विशिष्टा द्वैतं मे ` [श्लोक 121]. रामानुज संप्रदाय में नारायण की चतुर्भुज मूर्ति की पूजा होती है, जब कि स्वामीनारायण संप्रदाय में नारायण की द्विभुज मूर्ति की पूजा होती है. रामानुज और वल्लभ संप्रदायों में से महत्वपूर्ण तत्वों को लेकर स्वामीनारायण संप्रदाय बना है. रामानुजी मंदिरों में नारायण के साथ रामानुज की मूर्ति होती है, स्वामीनारायण संप्रदाय में भी नारायण के साथ सहजानंद स्वामी की मूर्ति होती है.

इस संप्रदाय में परमात्मा के निवास स्थान को अक्षरधाम माना गया है. परब्रह्म को आदि तथा अंतरहित माना गया है. ब्रह्मदशा को प्राप्त करके परब्रह्म की सेवा करना ही मुक्ति है. मुक्त के लिए परमात्मा अपार ही है, जैसे पक्षी के लिए आकाश अपार है. इस संप्रदाय के मतानुसार निर्विकल्प उपासना ही श्रेष्ठ है. भक्ति एवं सत्संग का महत्त्व भी इस संप्रदाय की अपनी निजी विशेषता है.

वड़ताल एवं अहमदाबाद में स्वामीनारायण की पीठ हैं. दादा खाचर के दरबार में दिये हुए उपदेश की साक्षी में गढड़ा एवं सारंगपुर में बड़े मंदिर विद्यमान हैं.

मुक्तानंद, ब्रह्मानंद, प्रेमानंद, निष्कुलानंद, देवानंद, मंजुकेशानंद आदि संतों ने भी स्वामीनारायण धर्म का प्रचार एवं प्रसार किया है, एवं हिन्दी में पद रचनाएँ भी की हैं.

इस प्रकार धर्म एवं सुधार की दृष्टि से गुजरात में इस संप्रदाय का अपना विशेष महत्त्व है.

ब्रह्मचारी आश्रम

ब्रह्मचारी आश्रम की स्थापना महात्यमराम [सं. 1882-1945 वि.] ने की थी.[1] महात्यमराम के उपलब्ध चित्र में उनकी वेशभूषा, पंथ के शिष्यों द्वारा गुरु बानी का विधिवत् पूजन, कबीर का स्मरण एवं अनुकरण देखकर अनुमान किया जा सकता है महात्यमराम ' राम कबीरिया ' पंथ के अनुयायी रहे होंगे.[2] इनके गुरु का नाम आदितराम था.[3]

ब्रह्मचारी आश्रम की मुख्य गद्दी सीमरड़ा [जिला खेडा] में है. इस पंथ की गुरु शिष्य परंपरा की श्रृंखला उपलब्ध है. इसमें देवराम आदि गुरु एवं नौकाराम अंतिम शिष्य हैं - देवराम --> आदितराम --> महात्यराम --> नरभेराम --> निरमलराम --> शालंगराम --> परागराम ---> लायकराम --> नौकाराम .[4] महात्यमराम के एक और शिष्य हरिराम को पादरा तालुका के डबका गाँव में मंदिर बाँधकर गुरु गद्दी की स्थापना करने की आज्ञा हुई. ' सत् रमति राम ' इस पंथ का मूल मंत्र है. इस पंथ ने कबीर तथा अखाकी तरह बाह्याडंबरों का जोरदार विरोध किया है.

श्रेयस्साधक अधिकारी वर्ग

गुजरात के ज्ञानमार्गी संत एवं सुधारक श्रीमाद् नृसिंहाचार्य [सं. 1910- सं. 1953 वि.] ने अपने पट्ट शिष्य छोटालाल मास्तर साहब [विश्ववंद्य] की प्रेरणा से श्रेयस्साधक अधिकारी वर्ग की स्थापना सं.1938 वि. में की थी. ' श्रेयस्साधक ' का अभिधार्थ है - श्रीमाद् नृसिंहाचार्य की दीक्षा से ब्रह्मसंबंध प्राप्त किये हुए मुमुक्षु, और व्यंजनार्थ है - प्राणीमात्र का

---

1. हिन्दी साहित्य को गुजरात के संत कवियों की देन, डॉ. रामकुमार गुप्त, पृ. 80.
2. गुजरात के संतों की हिंदी वाणी-डॉ. अंबाशंकर नागर, पृ. 401.
3. श्री महात्यम ज्ञान प्रकाश - सं. 1996- विनंती.
4. वही, पृ. 6 निवेदन.

श्रेयस करना जिसके जीवन का ध्येय है वह. इस वर्ग का प्रधान उद्देश्य सदुपदेश, दीक्षा, प्रत्यक्ष बोध, कीर्तन, साधन समारंभ एवं सत्साहित्य के माध्यम से साधक को मोक्ष प्राप्ति का पथ निदर्शन करना है. पंथ और संप्रदाय से परे रहकर यह वर्ग आज भी सनातन धर्म के सिद्धांतों को समझाकर मुमुक्षुओं के हृदय परिवर्तन का पवित्र कार्य कर उन्हें मोक्ष का अधिकारी बनाने का पुण्य कार्य कर रहा है .

` श्रेयस ` की व्याख्या करते हुए श्रीमद् नृसिंहाचार्य के पुत्र श्रीमद उपेन्द्राचार्य [सं. 1942-1993 वि.] ने कहा है कि [1]

1. कर्तव्य, ज्ञातव्य तथा प्राप्तव्य की सिद्धि वही श्रेयस है.
2. संपूर्णता ही श्रेयस है.
3. मनुष्य को प्राप्त होनेवाली उच्च भूमिका ही श्रेयस है.
4. मनुष्य को संपूर्ण सुख का अनुभव करा सके वही श्रेयस है.
5. जीवत्व की निवृत्तिपूर्वक ईशत्व की सिद्धि ही श्रेयस है.

इसी प्रकार श्रेयस्साधक की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि --

1. उक्त प्रकार के श्रेय को प्राप्त करने के प्रयत्न करनेवालों को श्रेयस्साधक कहते हैं .
2. शरीर, मन और आत्मा का संपूर्ण विकास करने के प्रयत्न करनेवाले ` चेतन यंत्र ` ही श्रेयस्साधक हैं.
3. आत्मशोधन करनेवाला ही श्रेयस्साधक है.

इस वर्ग की यह मान्यता है कि मनुष्य को संसार में अपने व्यावहारिक धर्मों का पालन करते हुए जलकमलवत् रहकर ईश्वर प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिए .

समय और परिस्थितियों के आधार पर गुजरात में इस वर्ग का अपना महत्त्व है. इस वर्ग के स्थापक श्रीमद् नृसिंहाचार्यजी ने सं. 1930 वि. में धार्मिक

---

1. श्रीमद् नृसिंहाचार्यजी शताब्दी - स्मृति-ग्रंथ, पृ. 9.

शिक्षा हेतु धार्मिक विद्यालय की स्थापना की थी. उन्होंने समय को परख कर औद्योगिक शिक्षा का भी आरंभ किया था.

इस वर्ग ने गुजरात में अध्यात्म विद्यापीठ का कार्य किया है . उस समय समाज में दंभ, पाखंड, बाह्याचार और स्वेच्छाचार की व्यापकता थी. इस निर्बलता का लाभ उठाकर ख्रिस्ती मिशनरियाँ धर्म परिवर्तन की प्रक्रिया को बड़े वेग से चलाती थीं. इस वर्ग ने धर्म परिवर्तन की प्रवृत्ति को रोककर जनसमाज को योग्य मार्गदर्शन दिया और बाल विधवाओं को प्रभुमय जीवन जीने और दुखियों का दुःख दूर करने के लिए प्रेरित किया. बाजीगौरी मुंशी और नानी बहन गज्जर ने सूरत और राजकोट में वनिता विश्राम की स्थापना की थी . अहमदाबाद की बहरे गूँगे की शाला इस वर्ग की समाजसेवा का ज्वलंत प्रतीक है.

समाज की नयी पीढी उचित संस्कारों से विभूषित हो इस हेतु श्रीमद उपेन्द्राचार्यजी ने अपने विश्ववंद्य उद्यान, बड़ौदा में ` चारित्र्य मंदिर ` नामक शिक्षालय की स्थापना की थी. इसके पाठ्यक्रम में ऋषियों के साथ अनेक आदर्श महापुरुषों का जीवन चरित्र भी सम्मिलित किया गया था और अत्यंत चाव से वे स्वयं छात्रों को पढ़ाया करते थे.

साधकों के मार्गदर्शन हेतु श्रीमद् नृसिंहाचार्य एवं ` विश्ववंद्य ` ने महाकाल, प्रातःकाल, यम दंड, धर्मध्वज एवं श्रीमद उपेन्द्राचार्य ने ` श्रेयसाधक ` नामक पत्रिकाएँ निकाली थीं, जिन्होंने तत्कालीन समाज में ज्ञानगंगा का कार्य किया था. साधकों का पथ प्रदर्शन करने के लिए श्रीमद् नृसिंहाचार्य जी ने साहित्य सर्जन भी किया है. उनका सारा साहित्य निम्नलिखित ग्रंथों में सम्मिलित है -

1 नृसिंह वाणी विलास भाग -1,2,3 . 2 भामिनी भूषण [5 भाग]. 3 श्री त्रिभुवन विजयी खड्ग [उपन्यास]. 4 श्री सिद्धांत सिंधु . 5 सती सुवर्णा. 6 श्री सुरेश चरित्र [नाटक]. 7. श्री सदबोध पारिजातक 8 श्री पंचवरद वृतान्त 9 सुखार्थ सदुपदेश . 10 नृसिंह किरणावली . 11 अनुभव प्रदीप.

श्रीमद उपेन्द्राचार्य ने जो काव्य रचना की उसे ` उपेन्द्र गिरामृत ` प्रथम परिवाह और ` उपेन्द्र गिरामृत ` द्वितीय परिवाह में संकलित किया गया है. इसके उपरांत ` विश्ववंद्य `, जयंती देवी, प्रमीला बहन, आनंद लहरी, नर्मदाशंकर देवशंकर महेता, कौशिकराम महेता, जेकिशन कणिया, चुनीलाल ओझा आदि सर्जकों ने भी इस वर्ग के साहित्य को अपनी वाणी से विभूषित किया है. साधन समारंभ इस वर्ग की अपनी निजी विशेषता है, जो प्रति वर्ष फाल्गुनी पूर्णिमा से सात दिन तक आयोजित किया जाता है, जिसमें साधक संयम, नियम, व्रत, व्याख्यान, श्रवण, जप, तप आदि करके अपने जीवन को शुद्ध करनेका प्रयत्न करते हैं. आजतक 83 साधन समारंभ आयोजित हो चुके हैं.

इस वर्ग के साहित्य की खुमारी और मस्ती के उदाहरण भी देख लें -

चलो रे चलो कोई निजानंद वनमें,
जो कोहु जाई गिरे उस वनमें सो बड़भागी सबनमें ।

बृ. वा. विलास भाग-2 , पृ. 130

अब मैं भी भया जग राया,
निशान गड़ाया, डंका बजाया,
हृदयमंडल में नाद जगाया ।

बृ. वा. विलास भाग-3, पृ.157.

ब्रह्म हमारा राज है, ब्रह्म हमारा साज,
हम ही ब्रह्म स्वरूप हैं, हुआ अभिन्न आज ।

उपेन्द्र गिरामृत । पृ. 118.

इस प्रकार देखा जाय तो श्रेयस्याधक अधिकारी वर्ग ने तत्कालीन गुजरात में सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक एवं शैक्षणिक क्षेत्रों के उत्थान में अपना मूल्यवान योगदान देकर भारतीय संस्कृति का विजय-ध्वज लहराया है.

राधास्वामी संप्रदाय

राधास्वामी संप्रदाय को कबीर संप्रदाय का एक भाग माना जाता है.

इस संप्रदाय के स्थापक स्वामी शिवदयालसिंह सेठ - स्वामीजी महाराज-थे. वे आगरा में पन्नी गली में रहते थे. आगरा में ही दयाल बाग के सामने स्वामी बाग में इनकी ` समाध ` है. यह संप्रदाय वंश परंपरागत नहीं है. स्वामीजी महाराज के बाद हजूर महाराज --> महाराज साहब --> बाबूजी महाराज आदि संतों ने गद्दीपति के रूप में यशस्वी सेवा प्रदान की है. फिलहाल गद्दी पर कोई विराजमान नहीं है.

स्वामीजी के शिष्य जालिमसिंह ने पंजाब में ब्यास नदी के किनारे पर ` ब्यास डेरा ` नामक पंथ की स्थापना की. ` हुक्का ` [1] और ` शीत प्रसादी ` [2] के कारण जालिमसिंह ने राधास्वामी पंथ का त्याग कर नये पंथ की स्थापना की.

राधा स्वामी संप्रदाय पुनर्जन्म एवं कर्मफल में दृढ़ विश्वास करता है. कर्मबंधन से छुटकारा पाने के लिए ` सूरत ` [3] को पिंड धारण करना पड़ता है. संत सतगुरु ही राधास्वामी धाम का मार्ग बताते हैं. इस पंथ में मूर्तिपूजा एवं बाह्याडंबरके त्याग का अधिक महत्त्व है. संत सतगुरु एवं सत्संगी दोनों संसारी हुआ करते हैं.

गुजरात में 15 से 20 हजार सत्संगी हैं. अहमदाबाद, वडोदरा, सूरत जैसे बड़े नगरों में प्रतिदिन तीन बार सत्संग होता है.

इस पंथ में सिख, सिंधी, नाई, कुम्हार, पटेल, बढई आदि सत्संग करते हैं. राजपीपला में परमहंस महाराज ने सत्संग के लिए भवन का निर्माण भी करवाया है.

इस प्रकार राधास्वामी संप्रदाय का प्रभाव गुजरात के संत कवि एवं जनजीवन पर व्याप्त है.

---

1. हुक्का पीनेवाले संत .
2. स्वामी महाराज के भोजन के बाद अच्छिष्ट भोजन का अन्य द्वारा ग्रहण किया जाना.
3. सांप्रदायिक अर्थ ` जीव `

प्रार्थना समाज

अंग्रेजों के आगमन के साथ सुधार की लहरें भारत में फैलने लगीं. इसी भावना से प्रेरित होकर बंगाल में राजाराममोहनराय ने ब्रह्मोसमाज की स्थापना की, और अहमदाबाद के भोलानाथ साराभाई ने सन् 1851 में अपने मित्रों के सहयोग से प्रार्थना समाज की स्थापना की. उपनिषदीय ब्रह्म में प्रार्थना समाजियों का विश्वास है, और उसे प्राप्त करने के हेतु वे सगुणोपासना को एक साधन मानते हैं. जन कल्याण और जनसेवा ही इनका मुख्य लक्ष्य है. सूरत में श्रीमन् नृसिंहाचार्य ने प्रार्थना समाज को व्यावहारिकता प्रदान की.

इस समाज के सिद्धांत निम्नलिखित हैं --

1. ईश्वर एक है, वही सृष्टि का सर्जक, पालक एवं संहारक है.
2. ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान, न्यायी एवं करुणामय है.
3. भक्ति ही धर्म है, उससे ईश्वर प्रसन्न होते हैं, और आत्मा का कल्याण होता है.

इस प्रकार प्रार्थना समाज ने गुजरात की जनता को सदुपदेश दिया है.

उदा पंथ

सं. 1800 वि. के आसपास कबीरवड़ के पास एक महंत हो गये. इन्होंने जेसलमीर के राजकुमार चतुरसिंह को दीक्षा दी. चतुरसिंह के शिष्य का नाम गोपालदास था. जीवणदास गोपालदास के शिष्य थे. जीवणदास ने उदा पंथ की स्थापना की थी. [1]

उदा पंथी कबीरपंथ से उलटा कार्य करते हैं. इन्होंने समानता, निर्गुण, कर्मकांड के उपहास की भावना आदि का त्याग मुसलमानों के आक्रमण से बचने या नये संप्रदाय की विशेषता प्रतिपादित करने के उत्साह में किया लगता है.

उदा पंथी अपने साथी पंथी के घर का ही पानी पीते हैं. शिक्षा के

---

1. कबीर संप्रदाय - किशनसिंह चावड़ा, पृ. 145.

संबंध में इनमें मतभेद हैं.

उदापंथियों की संख्या सूरत और कानम प्रदेश में विशेष है.

आर्य समाज

सौराष्ट्र के टंकारा गाँव के निवासी महर्षि दयानंद सरस्वती ने वेद मूलक आर्य सिद्धांतों के प्रचार एवं प्रसार हेतु जिस संगठन की स्थापना सन् 1875 ई. में बम्बई में की, इसे आर्यसमाज कहते हैं. पाश्चात्य संस्कृति के प्रवाह में भारतीय जनता वेद को विस्मृत न कर जाय, इसलिए उन्होंने वैदिक सिद्धांतों के आधार पर समाज-सुधार किया. वे मानते थे कि भारतीय लोगों की अवनति का मूल कारण है वेदों की विस्मृति . उन्होंने ' वेद की ओर पुनः मुडिये ' की घोषणा की.

आर्य समाज के नियम -

1. सर्व सत्य और सर्व पदार्थों की विद्या का आदि मूल परमेश्वर ही है.
2. ईश्वर सच्चिदानंद स्वरूप, निराकार, निर्विकार, सर्वशक्तिमान, न्यायी, दयालु, अजन्मा, अनंत, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वव्यापक अन्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टि के कर्ता है, उसकी ही उपासना करनी चाहिए .
3. सर्व सत्य विद्याओं की पुस्तक वेद है, वेद पढ़ना, पढ़ाना, सुनना एवं सुनाना ही आर्यों का परम धर्म है.
4. सत्यग्रहण और असत्य के त्याग के लिए हर मानव को सदा तैयार रहना चाहिए.
5. समाज का उद्देश्य है शारीरिक, आत्मिक एवं सामाजिक उन्नति करना.
6. सर्व कार्य धर्मानुसार करना चाहिए.
7. सब के साथ प्रीतिपूर्ण, धर्मानुसार बर्ताव करना चाहिए.
8. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए.
9. हर आर्य को सबकी उन्नति में अपनी उन्नति माननी चाहिए.

आर्यसमाज का यह एक ऐसा घोषणा पत्र है जिस पर संसार का हर

निष्पक्ष आस्तिक हस्ताक्षर कर सकता है. गुजरात के छोटे-बड़े नगरों में इसकी शाखाएँ हैं.

इस प्रकार आर्यसमाज ने भी गुजरात की अस्मिता की रक्षा करने में अपना मूल्यवान योगदान दिया है.

थियोसोफिकल सोसायटी

थियोसोफिकल सोसायटी आंतरराष्ट्रीय संस्था है. इसकी स्थापना न्यूयोर्क में दि. 17-11-1875 के दिन रशियन महिला मेडम ब्लेवट्स्की और अमेरिकन नागरिक कर्नल ओलकोट के द्वारा हुई थी. यह सोसायटी 90 देशों में जड़ता को दूर करके अपना सुधार कार्य कर रही है. इसका प्रधान कार्यालय अडियार [मद्रास] में है. इसका भारतीय कार्यालय वाराणसी में है.

एनी बेसन्ट [कार्यकाल 1875-1907 ई.], डॉ. जी. एस. एरून्डेल [सन् 1934-45], सी. एन. श्रीराम [1953-73], जोन बी. एस. कोटस जैसे समर्थ प्रमुखों ने इस संस्था को समृद्ध किया है. भारत में इस सोसायटी की कुल 505 शाखाएं हैं. वडोदरा में रेवा लोज [सन् 1882] पुरानी संस्था है, जिसको छोटालाल सुतरिया, वामनराव निकते, धनसुखराम वहोरा, प्राणलाल बक्षी, महेन्द्रकुमार देसाई, भारतेन्दु सिंहा, डॉ. अनंत जी जावड़ेकर, डॉ. अरूणोदय जानी आदि कार्यकर्ताओं ने समृद्ध किया है. आज भी हर रविवार को यहाँ पर आध्यात्मिक प्रवचन होते हैं. गुजरात के प्रमुख नगरों में इसकी शाखाएं हैं.

थियोसोफिकल सोसायटी सत्य शोधकों का मंडल है ' सत्यान्नास्ति परोधर्मः ' इसका मुद्रालेख है.

इन संप्रदायों के उपरांत आचार्य रजनीश और आचार्य आठवलेजी की शिबिरों के द्वारा गुजरात का शिक्षित जनजी-वन धर्मपरायण बनता जा रहा है. दिव्यजीवन संघ के द्वारा स्वामी शिवानंद और अरविंद सोसायटी के द्वारा महर्षि अरविंद एवं माताजी के धर्म विषयक सिद्धांतों का प्रसार भी हो रहा है.

साँईबाबा के भक्त भी गुजरात में विद्यमान हैं. डोंगरे शास्त्री भी भागवत् भक्ति के द्वारा गुजरात के जनजीवन को आंदोलित कर रहे हैं. इनके साथ-साथ पू. मोटा की ध्यान प्रवृत्ति ने, रविशंकर महाराज की निष्काम सेवाने, आचार्य श्रीराम शर्मा के गायत्री परिवार ने और आचार्य तुलसी के अणुव्रत आंदोलन ने गुजरात के जनजीवन की धार्मिक क्षितिजों को विस्तृत किया है.

गुजरात के राजाओं ने भी विभिन्न संप्रदाय एवं उनके साहित्य को हमेशा आदर की दृष्टि से देखा है. बौद्ध मत, जैन मत आदि संप्रदायों को गुजरात के तत्कालीन राजाओं के द्वारा प्रश्रय भी मिला था.

गांधीजी ने सर्व धर्मों का समन्वय करके अपने जीवन का गठन किया था. सयाजीराव गायकवाड ने धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए धर्म संस्थाओं को प्रस्थापित किया था , जिससे गुजरात में सर्व धर्म समन्वय की नयी ऊर्जा उपलब्ध हुई थी.

इस प्रकार गुजरात के विभिन्न संप्रदायों के पंथ अलग होने पर भी उनकी मंज़िल तो एक ही रही है.